

धम्मचक्कप्पवत्तनसुत्त

DHAMMACAKKAPPAVATTANASUTTA



बौद्ध-धर्म में आचार-पद्धति (ETHICS)



धम्मचक्कप्पवत्तनसुत्त

DHAMMACAKKAPPAVATTANASUTTA



बौद्ध-धर्म में आचार-पद्धति (ETHICS)



Printed and donated for free distribution by
The Corporate Body of the Buddha Educational Foundation
11F., 55 Hang Chow South Road Sec 1, Taipei, Taiwan, R.O.C.
Tel: 886-2-23951198 , Fax: 886-2-23913415
Email: overseas@budaedu.org
Website: <http://www.budaedu.org>
Mobile Web: m.budaedu.org

This book is strictly for free distribution, it is not for sale.
यह पुस्तिका विनामूल्य वितरण के लिए है बिक्री के लिए नहीं ।

धम्मचक्कप्पवत्तनसुत्त

DHAMMACAKKAPPAVATTANASUTTA

लेखिका : उपासिका आर० तुली
बुद्ध विहार भारतीय महाबोधि सभा
दिल्ली सेन्टर का प्रकाशन
१९९६

मुद्रक : नरेन्द्र स्टोर्स, जी - 47, कनाट सर्कस, नई दिल्ली - 110 001

प्रकाशकीय

धम्मचक्रप्पवत्तनसुत्त बुद्ध धर्म का सार तत्त्व है। आज से दो हजार पाँच सौ चालीस साल पहले, वाराणसी में इसिपतन भिगदाय में पहले पहल महाकारुणिक शान्तिनायक तथागत ने पाँच वर्गीय भिक्षुओं को सम्बोधित कर यह जो उपदेश दिया था वह पहले न सुने गये धर्मों में आँख उत्पन्न कराने वाला, ज्ञान उत्पन्न कराने वाला प्रज्ञा उत्पन्न कराने वाला, विद्या उत्पन्न कराने वाला और आलोक उत्पन्न कराने वाला है। इसी धम्मचक्रसुत्त को ही मज्झिमा पटिपदा और आर्य अष्टांगिक मार्ग तथा चार आर्य सत्य भी कहा जाता है।

आज के युग में **Middle Path** (मध्यम मार्ग) का बहुप्रचलित प्रयोग भी इसी मज्झिमा पटिपदा से ही तत्पर्य रखते हैं जिसका मूल अर्थ को भले ही क्यों न भुला दिया गया हो।

निःसंदेह मध्यम मार्ग (दोनों अतियों को छोड़) को अपनाने से मन की शान्ति ही नहीं निर्वाण भी प्राप्त होता है। व्यक्तिगत और सामाजिक हित इसी में ही निहित रहता है।

आज बुद्धाब्द दो हजार पांच सौ चालीस में वैशाख पूर्णिमा के दिन उपासिका श्रीमती आर. तुली के त्रिरत्न (बुद्ध, धम्म, संघ) पर असीम श्रद्धा के कारण अनुत्तर धर्मचक्रप्रवर्तनसूत्र संग्रहीत यह धर्म पुस्तक उपलब्ध हो रही है। धर्मचक्रसूत्र पर उनकी अपनी व्याख्या, मूल पालि, हिन्दी अनुवाद तथा अंग्रेजी अनुवाद भी इसी में संग्रहीत है। ज्ञानपिपासु पाठक जन इसी सद्धर्मामृत से लाभान्वित होंगे और सुधी पाठाकें के साधुवाद ही उनका अपना परिश्रम के लिए पर्याप्त है।

भवतु सब्ब मंगलं

डब्ल्यु मेधानन्द

भिक्षु-इन-चार्य

बुद्ध विहार

महाबोधि दिल्ली सेन्टर

नई दिल्ली

३.५.१९६६

अनुक्रम

	पृष्ठ
प्रकाशकीय	
धर्मचक्र प्रवर्तन	4-10
धम्मचक्कप्पवत्तनसुत्त – पालि	11-15
धम्मचक्कप्पवत्तनसुत्त – हिन्दी	15-19
Dhammacakkappavattanasuttam	20-23

धर्मचक्रप्रवर्तन

चार आर्य सत्य

धम्मचक्क पवत्तन सुत्त में भगवान बुद्ध ने बुद्धत्व प्राप्त करने के पश्चात् जो पहला प्रवचन दिया उसमें चार आर्य सत्यों का वर्णन है, जिसका उन्हें ज्ञान हुआ। धम्मचक्क पवत्तन सुत्त में चार आर्य सत्यों का विवरण है। धम्मचक्क पवत्तन सुत्त में भगवान बुद्ध की शिक्षाओं का सार है। यह एक ही सुत्त है जिसमें सब कुछ हैं, धर्म और ज्ञान को समझने के लिये।

कहते हैं जो बोधिवृक्ष के नीचे बुद्धत्व प्राप्त करने के पश्चात् भगवान बुद्ध ने सोचा जो ज्ञान मैंने पाया है, जिस दिव्य घटना का मैंने अनुभव किया है, वह इतनी सूक्ष्म है कि शब्दों में उसको कहना कठिन है। उन्होंने सोचा कि जो मैंने पाया है, वह इतना सूक्ष्म है कि शब्दों में उसका बयान नहीं किया जा सकता, सिखाया नहीं जा सकता। अतः मैं खामोश रहूंगा। चुप रहूंगा। मैंने जो पाया है वह स्वअनुभव से ही समझा जा सकता है और पाया जा सकता है। अतः शेष जीवन मैं किसी से कुछ नहीं कहूंगा और बोधि वृक्ष के नीचे ही बैठा रहूंगा। अकेला ही विचरण करूंगा। भगवान बुद्ध बोधि वृक्ष के नीचे बैठे ऐसा सोच ही रहे थे कि ब्रह्मा भगवान बुद्ध के पास आए और उनसे याचना की और मनाया कि वह लोगों में अपना ज्ञान बांटें। और विश्वास दिलाया कि समाज में ऐसे लोग हैं जो उनकी शिक्षा को समझ सकेंगे जिनकी आंखों में थोड़ी सी धूल जमा है।

भगवान बुद्ध इस प्रकार ब्रह्मा से प्रेरणा पा बोध गया से वाराणसी के लिये चल पड़े। मार्ग में उन्हें एक तपस्वी साधु मिला। वह भगवान बुद्ध के व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुआ, और पूछा कि ए तपस्वी ! ऐसा क्या तुमने पाया है जो तुम्हारे तेजस्वी शरीर से प्रकाश की किरणें फूट रही हैं? भगवान बुद्ध ने उत्तर दिया मुझे बुद्धत्व की प्राप्ति हुई है। मैं अर्हत हूं। मैं बुद्ध हूं। उस साधु ने सोचा कि कठिन तपस्या के प्रभाव से यह अपने को बहुत बड़ा समझने लगा है, अपने को बुद्ध समझने लगा है और आगे चला गया।

उसके बाद भगवान बुद्ध वाराणासी में ऋषिपतन मृगदाव में गये जहां उनके पहले साथी थे। वे पांचों उनके साथी श्रद्धालु भक्त थे। किन्तु जब उन्होंने बुद्ध को बुद्धत्व प्राप्त होने से पहले, अनशन त्याग, खीर खाते हुए देखा तो सोचा कि यह पतित हो गया है। अपने पथ से गिर गया है और वे साथी उनको वहीं छोड़कर चले गये। इससे भगवान बुद्ध को अवसर मिल गया बोधि वृक्ष के नीचे बैठने का और वहीं उन्हें बुद्धत्व प्राप्त हुआ।

बुद्धत्व प्राप्त करने के प्रश्नात् भगवान बुद्ध ने सोचा कि यदि मेरे गुरु आलार कालाम और उद्रक रामपुत्र आज जीवित होते तो मैं सबसे पहले उन्हें धर्मोपदेश देता। वह धर्म को शीघ्र ही जान लेते। वे पण्डित थे, चतुर थे, मेधावी थे। फिर भगवान के मन में हुआ कि उनके बाद, मेरे पहले साथी जो मेरे बहुत काम आने वाले थे, जिन्होंने साधना में लगे मेरी सेवा की थी, मेरे पहले साथी ही ज्ञान के अधिकारी हैं। जो मेरे अनशन त्यागने के कारण, मेरे को पतित समझ, मुझे छोड़ वाराणसी चले गये थे।

भगवान बुद्ध वाराणसी, अपने पहले साथियों की तरफ आ रहे थे तो उन पांचों साथियों ने पहले तो उनकी ओर ध्यान नहीं दिया। उन्हें देखते हुए भी अनदेखा कर दिया। किन्तु जैसे ही वह पास आए उन साथियों ने भगवान बुद्ध के तेजस्वी व्यक्तित्व को देखा तो देखते ही रह गये और उनके स्वागत के लिये उठ खड़े होकर और उनको उच्च आसन पर बैठा कर उनका समुचित आदर किया। भगवान बुद्ध ने उनको पहला प्रवचन जो दिया, उनकी शंका को मिटाने के लिये था। जिसके कारण अनशन त्याग आहार ग्रहण करने वाले गौतम को वे छोड़ गये थे।

भगवान बुद्ध ने कहा – भिक्षुओ ! दो अतियों को छोड़ दो। दो अतियों का सेवन करना अनर्थ है, अज्ञानता है। जैसे काम सुख में आसक्त हो लिप्त होना। शरीर को अति पीड़ा देना, अति कष्ट देना। इन दो अतियों को छोड़ मैने मध्यम मार्ग खोजा है जो आख देने वाला है, सुख देने वाला है। शान्ति देने वाला है। ज्ञान देने वाला है। आनन्द देने वाला है। मध्यम मार्ग ही आर्य अष्टांगिक मार्ग है – ठीक दृष्टि, ठीक संकल्प, ठीक वचन, ठीक कर्म, ठीक जीविका, ठीक प्रयत्न, ठीक स्मृति और ठीक समाधि।

भगवान बुद्ध ने अपने उन साथियों को चार आर्य सत्यों पर प्रवचन दिया। चार आर्य सत्यों का ज्ञान कराया। उन्होंने बताया कि दुःख है और दुःख का कारण है। दुःख का निरोध है और दुःख निरोध का उपाय है, दुःख निरोध का मार्ग है। इस प्रकार भगवान बुद्ध का पहला प्रवचन उनके लिये था, जिनकी आखों में अभी प्रर्याप्त धूल जमा थी।

चार आर्य सत्य -

- | | |
|------------------|----------------------------|
| १. दुःख है | २. दुःख का कारण है |
| ३. दुःख निरोध है | ४. दुःख निरोध का मार्ग है। |

दुःख की व्याख्या करते हुए भगवान बुद्ध ने बताया। जन्म दुःख है। बुढ़ापा भी दुःख है। मरण, शोक—रुदन, मन की बेचैनी दुःख है। प्रिय का वियोग दुःख है। अप्रिय का संयोग दुःख है। इच्छा करके जिसे नहीं पाया, दुःख है।

दुःख का हेतु है दुःख का कारण है — तृष्णा, वासना, काम भोग की तृष्णा इन्द्रियों के जितने प्रिय विषय हैं, उन विषयों के साथ सम्पर्क, मन में तृष्णा पैदा करते हैं। सांसारिक प्रदार्थों की तृष्णा के कारण ही संसार में लड़ाई झगड़े हैं। राजा राजाओं से लड़ता है। ब्राह्मण ब्राह्मणों से लड़ता है। माता पुत्र से, पुत्र माता से, भाई भाई से, पिता पुत्र से, पुत्र पिता से, भाई बहिन से, बहिन भाई से, मित्र मित्र से लड़ते हैं। इस प्रकार कलह विवाद करते हुए, एक दूसरे पर आक्रमण करते हुए महान् दुःख को प्राप्त होते हैं।

दुःख का निवारण — इच्छा, तृष्णा, वासना ही दुःख का मूल कारण है। इच्छा, तृष्णा, वासना को अपने अन्दर नहीं आने देना। इच्छा, तृष्णा, वासना का नाश करना। सांसारिक प्रदार्थों से, सांसारिक विचारों से जब तृष्णा छूट जाती है, तभी तृष्णा का अन्त होता है। और तृष्णा के अन्त के साथ ही दुःख का अन्त होता है।

बाहर की सांसारिक चमक दमक में अपने को नहीं भटकाना। सांसारिक व्यक्ति, सांसारिक पदार्थों को इक्छा करने में, पद, प्रतिष्ठा बढ़ाने में लगा है, जिससे तृष्णा और बढ़ती है। तृष्णा का कोई अन्त नहीं।

तृष्णा ही दुःख का स्रोत है। इच्छा शक्ति, वासना में आसक्त हो जाना, बन्ध जाना ही दुःख है। तृष्णा के मिट जाने से पुनर्जन्म का निरोध होता है। जन्म के निरोध से बुढ़ापा, मरण, शोक, रोना, मन की अशान्ति नष्ट हो जाती है। इस प्रकार दुःखों का अन्त होता है।

भगवान बुद्ध ने कहा कि इतना समझ लो, जो पैदा हुआ है वह मरेगा भी। जिसका प्रारम्भ है उसका अन्त भी है। जो उदय हुआ है, वह अस्त भी होगा। जो बना है वह टूटेगा भी। यह प्रकृति का नियम है। यह शाश्वत सत्य है। अतः नियम के बाहर रह कर आसक्त होने में दुःख है। नियम में चलने से दुःख का अन्त है।

और आगे कहा कि संसार में हर वस्तु अनित्य है। नित्य रहने वाली नहीं, और अनित्य वस्तु से आसक्ति दुःख का कारण है।

दुःख निवारण का मार्ग – दुःख निवारण का मार्ग है आर्य अष्टांगिक मार्ग – ठीक दृष्टि, ठीक संकल्प, ठीक वचन, ठीक कर्म, ठीक जीविका, ठीक प्रयत्न, ठीक स्मृति, ठीक समाधि।

ठीक दृष्टि (राईट अंडरस्टैंडिंग) मन, वचन, शरीर से भले बुरे का ज्ञान, ठीक दृष्टि है। जब हमको ठीक दृष्टि होती है, ठीक अंडरस्टैंडिंग होती है, अपनी बुद्धि का ठीक प्रयोग करते हैं तो हमें भले बुरे का ज्ञान होता है। वे विचार जो हमारे अन्दर शान्ति पैदा करते हैं, शुद्ध हैं। जो विचार अशान्ति पैदा करते हैं वे हमारे स्वयं के अर्जित किये विचारों से जुड़े हैं। लोभ, द्वेष, मोह, अहंकार से जुड़े विचार हमारे स्वयं के अर्जित किए हुए विकार हैं जिनसे दुःख पैदा होता है।

दुःख क्यों है। दर्द क्यों दिया। खुशियां ही खुशियां क्यों नहीं दी। संसार में इतने दुःख क्यों है, कष्ट क्यों हैं। यह ऐसा नहीं होना चाहिए। जिनको हम चाहते हैं, प्यार करते हैं, वे मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। उनके वियोग से हमें असह्य दुःख होता है आदि। इस प्रकार सोचना धर्म नहीं है। धर्म यही कहता है कि यह प्रकृति का नियम है। यह ऐसा ही होता है। हमें उसको समझ कर, उसके अनुसार अपने विचारों का विकास करना है। अपनी मनःस्थिति को बदलना है। जहां हमारा स्वार्थ आ जाता है वहां हमारी दृष्टि, हमारी अंडरस्टैंडिंग अनर्थ हो जाती है, गलत हो जाती है।

हमारा मन दुःखी होता है—हम एक दूसरे को दोषी ठहराते हैं, जिससे हमारी समस्या और बढ़ जाती है, और कठिन हो जाती है। अच्छा हो यदि हम अपनी बुद्धि का प्रयोग करके, जागृत हो कर, चैतन्य रह कर अपनी समस्याओं का समाधान करें। भगवान बुद्ध कहते हैं—धर्म को जानने का यही एक मात्र उपाय है कि स्वयं को जानने का प्रयत्न करें। अपने विकारों को, अपनी अनर्थ, गलत भावनाओं को, गलत सोच को जानने का समझने का प्रयत्न करें, समस्याएं आसान हो जायेंगी। समस्याएं स्वयं ही सुलझ जायेंगी। यही ठीक दृष्टि है (राइट अंडरस्टैंडिंग है)

ठीक संकल्प (संकल्प) राइट एस्पिरेशन—ठीक विचार। ठीक विचार अपने हृदय में लाना। राग, हिंसा, प्रतिहिंसा रहित हो कर सोचना। तृष्णा अज्ञानता से पैदा होती है। ज्ञान से नहीं। ठीक अंडरस्टैंडिंग से ही ठीक संकल्प होता है। बाहर की चमक दमक हम देखते हैं, हममें तृष्णा पैदा होती है। हमारे पास सुन्दर मकान हो, सुन्दर कार हो, सुन्दर पत्नी हो, प्यारे होनहार बच्चे हों, धन हो, दौलत हो, प्रतिष्ठा हो आदि। जब ये सब चीजें नहीं होती हैं तो इन सबके लिये हमें तृष्णा पैदा होती है। ये सब चीजें हमारे पास होने पर भी हम सन्तुष्ट नहीं होते। हमारी तृष्णा और बढ़ जाती है, जिसका अन्त नहीं।

प्रायः ऐसा होता है कि जो सत्य है उसकी ओर हम ध्यान नहीं देते और जो सत्य नहीं है, उस ओर अनायास ही हम बड़ी गम्भीरता से ध्यान देते हैं। जिससे दुःख पैदा होता है। ठीक संकल्प हम विकसित कर सकते हैं — मेडीटेशन के अभ्यास से, ध्यान भावना के अभ्यास से।

ठीक वचन, ठीक कर्म, ठीक जीविका—कटु वचन न बोलें। समय, स्थान, अवसर को देखते हुए, जागरूक रह कर, होश में रहते हुए बोलें। झूठ न बोलें। निन्दा चुगली न करें। ऐसे शब्द न बोलें जिससे दूसरे की भावनाओं को चोट पहुँचे अथवा हीन भाव पैदा हो। सच्ची बात बोलें। मीठा बोलें, मधुर वाणी बोलें जिसे सुन कर दूसरे प्रसन्न हों और आप स्वयं भी आनन्दित हों।

हम जो कहते हैं और करते हैं उसके लिये हम स्वयं जिम्मेदार हैं। यदि हम जागरूक नहीं तो हम स्वयं को दुःखी करते हैं और दुःखी करते

चले जाते हैं। यदि कटु वचन बोला तो उसका परिणाम बुरा ही होगा, कटु ही होगा। उसके जिम्मेवार हम स्वयं हैं। इस प्रकार हम अपने कर्म बन्धन में स्वयं बन्धते हैं। जैसे—आपने देखा कोई आदमी गिरा है, आपके अन्दर उसी समय धर्म जागता है और आप उसे शीघ्र ही उठा लेते हैं। उस समय आपके मन में कोई स्वार्थ नहीं है। बदले में कुछ पाने की आकाक्षा नहीं है। आपके अन्दर करुणा है, दया भाव है और उस व्यक्ति को उठा कर, उसे चोट से बचा कर आप आनन्द अनुभव करते हैं। मन में आन्तरिक सन्तोष होता है। यह ठीक समझ है, ठीक कर्म है और धर्म है। इससे हम कर्म में नहीं बन्धते। किन्तु यही कर्म यदि हम स्वार्थवश, कुछ पाने की इच्छा से करते हैं, या इससे हमारी प्रशंसा होगी या इनाम मिलेगा, इस भाव से करते हैं तब हम अपने कर्म बनाते हैं। जब हम अच्छे कर्म करते हैं निष्काम भाव से, होश में रहते हुए, निःस्वार्थ भाव से, बुद्धि पूर्वक करते हैं उससे हम अपने कर्म नहीं बनाते। यह धर्म का मार्ग है।

ठीक जीविका है—सदाचार से की गई कमाई। सच्ची ईमानदारी की जीविका से जीवन चलाना। सच्ची जीविका के लिये हमें ध्यान रखना है कि उसमें किसी की हिंसा न हो। किसी को कोई हानि न पहुँचें। किसी का शोषण न हो। ड्रग्स का, विष का व्यापार, मद्य आदि का व्यापार हमारे समाज को हानि पहुँचाने वाले हैं अतः इनसे बचना, इनसे दूर रहना।

इस प्रकार सम्यक दृष्टि—ठीक अंडरस्टैंडिंग, ठीक समझ से ही सम्यक वचन, सम्यक कर्म, सम्यक जीविका जानी जाती है। इस प्रकार ठीक कर्म करने से हम अनुभव करते हैं कि हमारे ऊपर आशीर्वाद बरसता है।

ठीक प्रयत्न, ठीक स्मृति, ठीक समाधि इनका सम्बन्ध हमारे भीतर से है। इनका सम्बन्ध हमारे हृदय से है। जब हम आत्मा का विचार करते हैं तो हम विचार करते हैं, हमारे हृदय के सेन्टर में। प्रज्ञा (सिर) शील (शरीर) समाधि (हृदय) ये तीनों परस्पर जुड़े हैं। ये तीनों एक साथ मिल कर काम करते हैं। तभी हमें अनुभव की प्राप्ति होती है। इंद्रियों पर संयम, बुरे विचारों को रोकना, अच्छे विचारों को विकसित करना और सदा स्मरण रखना कि संसार में हर वस्तु अनित्य है। क्षण भंगुर है। सदा रहने

वाली नहीं। नाश होने वाली है। अतः मन, शरीर और चित्त के धर्मों को समझना।

बुद्धि है—ठीक दृष्टि, ठीक अंडरस्टैंडिंग, ठीक विचार।

सदाचार, नैतिकता है—ठीक वचन, ठीक कर्म, ठीक आजीविका, ठीक प्रयत्न, ठीक स्मृति और ठीक समाधि। ये सब एक दूसरे पर आधारित हैं। एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। ये हमारे इमोशन्स को, हमारी भावना को, हमारे मन को सन्तुलित करने में सहायक हैं। जब हमारा मन सन्तुलित होता है, हमारे इमोशन्स सन्तुलित होते हैं तो हमारे मन में एक आन्तरिक आनन्द का, शान्ति का अनुभव होता है। यही मध्यम मार्ग है। दो अतियों के बीच का मार्ग। इससे हमारी बुद्धि, हमारी इन्द्रियां, हमारे इमोशन्स में तादात्म्य रहता है। हार्मोनी रहती है। आर्य अष्टांगिक मार्ग पर चलने से, हमारे अन्दर गहन शान्ति और निर्भयता का विकास होता है। आर्य—अष्टांगिक मार्ग पर चल कर ही हम सच्चे आनन्द का, सच्चे सुख का अनुभव कर सकते हैं।

इस प्रकार कहते हैं, ब्रह्म, इन्द्र आदि देवताओं ने भी धर्म प्रवचन सुने और बहुत आनन्दित हो भगवान बुद्ध के प्रवचन पर हर्ष ध्वनि करने लगे, साधुवाद देने लगे और आल्हादित हो बोले कि धर्म — चक्र चल गया। इस प्रकार भगवान बुद्ध ने संसार में धर्म चक्र प्रवर्तन कर, धर्म की स्थापना की।

भवतु सब्ब मंगलं

उपासिका

आर. तुली

धम्मचक्कप्पवत्तनसुत्तं ।

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स ।

एवं मे सुत्तं, एकं समयं भगवा बाराणसियं विहरति इसिपतने मिगदाये । तत्र खो भगवा पञ्चवगिये भिक्खू आमन्तेसि द्वेमे भिक्खवे अन्ता पब्बजितेन न सेवितब्बा; योचायं कामेसु कामसुखल्लिकानुयोगो हीनो गम्मो पोथुज्जनिको अनरियो अनत्थसंहितो, योचायं अत्तकिलमथानुयोगो दुक्खो अनरियो अनत्थसंहितो ।

एते ते भिक्खवे उभो अन्ते अनुपगम्म मज्झिमापटिपदा तथागतेन अभिसम्बुद्धा चक्खुकरणी जाणकरणी उपसमाय अभिज्जाय सम्बोधाय निब्बानाय संवत्तति ।

कतमा च सा भिक्खवे मज्झिमा पटिपदा तथागतेन अभिसम्बुद्धा चक्खुकरणी जाणकरणी उपसमाय अभिज्जाय सम्बोधाय निब्बानाय संवत्तति?

अयमेव अरियो अट्ठङ्गिकोमग्गो, सेय्यथीदं; सम्मादिट्ठि सम्मासङ्गिकप्पो सम्मावाचा सम्माकम्मन्तो सम्माआजीवो सम्मावायामो सम्मासति सम्मासमाधि । अयं खो सा भिक्खवे मज्झिमापटिपदा तथागतेन अभिसम्बुद्धा चक्खुकरणी जाणकरणी उपसमाय अभिज्जाय सम्बोधाय निब्बानाय संवत्तति ।

इदं खो पन भिक्खवे दुक्खं अरियसच्चं; जातिपि दुक्खा जरापि दुक्खा व्याधिपि दुक्खो मरणम्पि दुक्खं अप्पियेही सम्पयोगो दुक्खो पिपेहि विप्पयोगो दुक्खो यम्पिच्छं न लभति तम्पि दुक्खं, सङ्खित्तेन पञ्चुपादानक्खन्धा दुक्खा । इदं खो पन भिक्खवे दुक्खसमुदयं अरियसच्चं; यायं तण्हा पो नो भविका नन्दिरागसहगता तत्र तत्राभिनन्दिनी, सेय्यथीदं—कामतण्हा भवतण्हा विभवतण्हा ।

इदं खो पन भिक्खवे दुक्खनिरोधं अरियसच्चं; यो तस्सायेव तण्हाय असेसविरागनिरोधो चागो पटिनिस्सग्गो मुत्ति अनालयो । इदं खो पन भिक्खवे दुक्ख निरोधगामिनीपटिपदा अरियसच्चं; अयमेव अरियो अट्ठङ्गिकोमग्गो,

सेय्यथीदं सम्मादिट्ठि, सम्मासङ्कप्पो, सम्मावाचा सम्माकम्मन्तो सम्माआजीवो
सम्मावायामो सम्मासति सम्मासमाधि ।

इदं दुक्खं अरियसच्चन्ति मे भिक्खवे पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेषु चक्खुं
उदपादि जाणं उदपादि पज्जा उदपादि विज्जा उदपादि आलोको उदपादि ।
तं खो पनिदं दुक्खं अरियसच्चं परिज्जेय्यन्ति मे भिक्खवे पुब्बे अननुस्सुतेसु
धम्मेषु चक्खुं उदपादि जाणं उदपादि पज्जा उदपादि विज्जा उदपादि
आलोको उदपादि ।

तं खो पनिदं दुक्खं अरियसच्चं परिज्जातन्ति मे भिक्खवे पुब्बे
अननुस्सुतेसु धम्मेषु चक्खुं उदपादि जाणं उदपादि पज्जा उदपादि विज्जा
उदपादि आलोको उदपादि । इदं दुक्खसमुदयं अरियसच्चन्ति मे भिक्खवे
पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेषु चक्खुं उदपादि जाणं उदपादि पज्जा उदपादि
विज्जा उदपादि आलोको उदपादि ।

तं खो पनिदं दुक्खसमुदयं अरियसच्चं पहातब्बन्ति मे भिक्खवे पुब्बे
अननुस्सुतेसु धम्मेषु चक्खुं उदपादि जाणं उदपादि पज्जा उदपादि विज्जा
उदपादि आलोको उदपादि । तं खो पनिदं दुक्खसमुदयं अरियसच्चं पहीनन्ति
मे भिक्खवे पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेषु चक्खुं उदपादि जाणं उदपादि पज्जा
उदपादि विज्जा उदपादि आलोको उदपादि ।

इदं दुक्खनिरोधं अरियसच्चन्ति मे भिक्खवे पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेषु
चक्खुं उदपादि जाणं उदपादि पज्जा उदपादि विज्जा उदपादि आलोको
उदपादि ।

तं खो पनिदं दुक्खनिरोधं अरियसच्चं सच्छिकातब्बन्ति मे भिक्खवे
पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेषु चक्खुं उदपादि जाणं उदपादि पज्जा उदपादि
विज्जा उदपादि आलोको उदपादि ।

तं खो पनिदं दुक्खनिरोधं अरियसच्चं सच्चिकतन्ति मे भिक्खवे पुब्बे
अननुस्सुतेसु धम्मेषु चक्खुं उदपादि जाणं उदपादि पज्जा उदपादि विज्जा
उदपादि आलोको उदपादि ।

इदं दुःखनिरोधगामिनीपटिपदा अरियसच्चन्ति मे भिक्खवे पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेषु चक्खुं उदपादि जाणं उदपादि पज्जा उदपादि विज्जा उदपादि आलोको उदपादि ।

तं खो पनिदं दुःखनिरोधगामिनीपटिपदा अरियसच्चं भावेतब्बन्ति मे भिक्खवे पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेषु चक्खुं उदपादि जाणं उदपादि पज्जा उदपादि विज्जा उदपादि आलोको उदपादि ।

तं खो पनिदं दुःखनिरोधगामिनीपटिपदा अरियसच्चं भावितन्ति मे भिक्खवे पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेषु चक्खुं उदपादि जाणं उदपादि पज्जा उदपादि विज्जा उदपादि आलोको उदपादि ।

याव कीवञ्च मे भिक्खवे इमेसु चतुसु अरियसच्चेषु एवं तिपरिवट्ठं द्वादसाकारं यथाभूतं जाणदस्सनं न सुविसुद्धं अहोसि, नेव तावाहं भिक्खवे सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेव मनुस्साय अनुत्तरं सम्मासम्बोधिं अभिसम्बुद्धो पच्चज्जासिं । यतो च खो मे भिक्खवे इमेसु चतुसु अरियसच्चेषु एवं तिपरिवट्ठं द्वादसाकारं यथाभूतं जाणदस्सनं सुविसुद्धं अहोसि ।

अथाहं भिक्खवे सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय अनुत्तरं सम्मासम्बोधिं अभिसम्बुद्धो पच्चज्जासिं । जाणञ्च पन मे दस्सनं उदपादि, अकुप्पा मे चेतोविमुत्ति अयमन्तिमा जाति नत्थिदानि पुनब्भवोति । इदमवोच भगवा अत्तमना पञ्चवग्गिया भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दुन्ति ।

इमस्मिं च पन वेय्याकरणस्मिं भज्जमाने आयस्मतो कोण्डज्जस्स विरजं वीतमलं धम्मचक्खुं उदपादि यं किञ्चि समुदयधम्मं सब्बं तं निरोध धम्मन्ति ।

पवत्तिते च पन भगवता धम्मचक्के भुम्मा देवा सहमनुस्सावेसुं, एतं भगवता बाराणसियं इसिपतने मिगदाये अनुत्तरं धम्मचक्कं पवत्तितं अप्पतिवत्तियं समणेन वा ब्राह्मणेन वा देवेन वा मारेन वा ब्रह्मुना वा केनचि वा लोकस्मिन्ति ।

भुम्मानं देवानं सद्ं सुत्वा चातुम्महाराजिका देवा सद्मनुस्सावेसुं, एतं भगवता बाराणसियं इसिपतने मिगदाये अनुत्तरं धम्मचक्कं पवत्तितं अप्पतिवत्तियं समणेन वा ब्राह्मणेन वा देवेन वा मारेन वा ब्रह्मुना वा केनचि वा लोकस्मिन्ति ।

चातुम्महाराजिकानं देवानं सद्ं सुत्वा तावत्तिंसा देवा सद्मनुस्सावेसुं, एतं भगवता बाराणसियं इसिपतने मिगदाये अनुत्तरं धम्मचक्कं पवत्तितं अप्पतिवत्तियं समणेन वा ब्राह्मणेन वा देवेन वा मारेन वा ब्रह्मुनावा केनचि वा लोकस्मिन्ति ।

तावत्तिंसानं देवानं सद्ंसुत्वा यामा देवा सद्मनुस्सावेसुं, एतं भगवता बाराणसियं इसिपतने मिगदाये अनुत्तरं धम्मचक्कं पवत्तितं अप्पतिवत्तियं समणेन वा ब्राह्मणेन वा देवेन वा मारेन वा ब्रह्मुना वा केनचि वा लोकस्मिन्ति ।

यामानं देवानं सद्ं सुत्वा तुसिता देवा सद्मनुस्सावेसुं — पे — तुसितानं देवानं सद्ं सुत्वा निम्माणरती देवा सद्मनुस्सावेसुं — पे — निम्माणरतीनं देवानं सद्ं सुत्वा परनिम्मितवसवत्तिनो देवा सद्मनुस्सावेसुं — पे — परनिम्मितवसवत्तीनं देवानं सद्ं सुत्वा ब्रह्मपारिसज्जा देवा सद्मनुस्सावेसुं — पे — ब्रह्मपारिसिज्जानं देवानं सद्ं सुत्वा ब्रह्मपुरोहिता देवा सद्मनुस्सावेसुं — पे — ब्रह्मपुरोहितानं देवानं सद्ं सुत्वा महाब्रह्मा देवा सद्मनुस्सावेसुं—पे—महाब्रह्मानं देवानं सद्ं सुत्वा परित्ताभा देवा सद्मनुस्सावेसुं—पे—परित्ताभानं देवानं सद्ं सुत्वा अप्पमाणभा देवा सद्मनुस्सावेसुं — पे — अप्पमाणभानं देवानं सद्ं सुत्वा आभस्सरा देवा सद्मनुस्सावेसुं — पे — आभस्सरानं देवानं सद्ं सुत्वा परित्तसुभा देवा सद्मनुस्सावेसुं—पे—परित्तसुभानं देवानं सद्ं सुत्वा अप्पमानसुभा देवा सद्मनुस्सावेसुं — पे — अप्पमानसुभानं देवानं सद्ं सुत्वा सुभकिण्हका देवा सद्मनुस्सावेसुं — पे — सुभकिण्हकानं देवानं सद्ं सुत्वा वेहप्फला देवा सद्मनुस्सावेसुं—पे — वेहप्फलानं देवानं सद्ं सुत्वा अविहा देवा सद्मनुस्सावेसुं—पे—अविहानं देवानं सद्ं सुत्वा अतप्पादेवा सद्मनुस्सावेसुं—पे—अतप्पानं देवानं सद्ं सुत्वा सुदस्सा देवा सद्मनुस्सावेसुं—पे—सुदस्सानं देवानं सद्ं सुत्वा सुदस्सी देवा सद्मनुस्सावेसुं—पे—सुदस्सीनं देवानं सद्ं सुत्वा अकणिड्ढका

देवा सदमनुस्सावेसुं । एतं भगवता बाराणसियं इसिपतने मिगदाये अनुत्तरं धम्मचक्कं पवत्तितं अप्पतिवत्तियं समणेन वा ब्राह्मणेन वा देवेन वा मारेन वा ब्रह्मना वा केनचि वा लोकस्मिन्ति ।

इतिह तेन खणेन तेन मुहुत्तेन याव ब्रह्मलोका सदो अब्भुग्गञ्छि । अयञ्च दससहस्सी लोकधातु सङ्कम्पि सम्पकम्पि सम्पवेधि । अप्पमानो च उलारो ओभासो लोके पातुरहोसि अतिक्कम्म देवानं देवानुभावन्ति । अथ खो भगवा उदानं उदानेसि, अज्जासि वत भो कोण्डज्जो अज्जासि वत भो कोण्डज्जोति । इतिहिदं आयस्मतो कोण्डज्जस्स अज्जाकोण्डज्जोत्वेव नामं अहोसी'ति ।

धर्मचक्रप्रवर्तनसूत्र

उन भगवान् अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध को नमस्कार है ।

ऐसा मैंने सुना । एक समय भगवान् वाराणसी के ऋषिपतन मृगदाय में विहार करते थे । वहाँ भगवान् ने पञ्चवर्गीय भिक्षुओं को संबोधित किया । हे भिक्षुओं ! इन दो अन्तों का प्रव्रजितों को नहीं सेवन करना चाहिये । कौन से दो ? जो यह हीन, ग्राम्य, पृथज्जनों के योग्य, अनार्य, अनर्थों से युक्त कामवासनाओं में लिप्त होना हैं और जो दुःखमय, आनार्य अनर्थों से युक्त आत्म पीड़ा में लगना है ।

भिक्षुओं ! इन दोनों ही अन्तों में न जाकर, तथागत ने मध्यम मार्ग को खोज निकाला है, जोकि आँख कराने वाला, ज्ञान देने वाला शान्ति के लिए, पूर्णज्ञान के लिए और निर्वाण के लिये है ।

वह कौन सा मध्यममार्ग तथागत ने खोज निकाला है ? जोकि आँख देने वाला..... ।

वह यही आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग हैं; जैसे कि सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वचन, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीविका, सम्यक् परिश्रम,

सम्यक् स्मृति और सम्यक् समधि हैं। भिक्षुओं यह है मध्यममार्ग जिसको तथागत ने समझा था जो आखँ देने वाला है.....।

भिक्षुओं ! यह दुःख आर्य सत्य है, जन्म भी दुःख है, जरा भी दुःख है, व्याधि भी दुःख है, मरण भी दुःख है, अप्रियों का मिलन दुःख है, प्रियों का वियोग दुःख है, जो इच्छा है वही न मिलना भी दुःख है, संक्षेप में पाचँ उपादानस्कन्ध ही दुःख हैं। भिक्षुओं ! यह दुःख समुदय आर्य सत्य है। यह जो तृष्णा है — फिर जन्मने की, नन्दिराग सहित जहाँ तहाँ प्रसन्न होने वाली; जैसे कि काम तृष्णा भव तृष्णा विभव तृष्णा।

भिक्षुओं ! यह है दुःख निरोध आर्य सत्य, जोकि उसी तृष्णा का सर्वथा विराग, निरोध, त्याग, प्रतिनिस्सर्ग, मुक्ति और न लीन होना।

भिक्षुओं ! यह है दुःख निरोध की ओर जाने वाला मार्ग आर्य सत्य। यही आर्यअष्टाङ्गिक मार्ग है। जैसे कि — सम्यक्दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वचन, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीविका, सम्यक् परिश्रम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि।

यह दुःख आर्य सत्य है ; भिक्षुओं ! यह मुझे अश्रुत पूर्व धर्मों में आँख उत्पन्न हुई, ज्ञान उत्पन्न हुआ, प्रज्ञा उत्पन्न हुई, विद्या उत्पन्न हुई, आलोक उत्पन्न हुआ। यह दुःख आर्य सत्य परिज्ञेय है, भिक्षुओं यह पहले न सुने गये धर्मों में आँख उत्पन्न हुई।

यह दुःख आर्य सत्य परिज्ञात है, भिक्षुओं यह पहले न सुने गये धर्मों में आँख उत्पन्न हुई.....। यह दुःख समुदय आर्य सत्य हैं भिक्षुओं ! यह मुझे पहले न सुने गये धर्मों में आँख उत्पन्न हुई.....।

यह दुःख समुदय आर्य सत्य है, भिक्षुओं ! यह प्रहातव्य है, यह मुझे अश्रुत पूर्व धर्मों में आँख उत्पन्न हुई.....। भिक्षुओं ! यह दुःख समुदय आर्य सत्य प्रहीन है, ऐसा मुझे पहले न सुने हुए धर्मों में आँख उत्पन्न हुई.....।

यह दुःख निरोध आर्य सत्य है, भिक्षुओं ! यह मुझे पहले न सुने गये धर्मों में आँख उत्पन्न हुई..... ।

सो यह दुःख निरोध आर्य सत्य प्रत्यक्ष करना चाहिए, भिक्षुओं ! यह मुझे पहले न सुने गये धर्मों में आँख उत्पन्न हुई..... ।

यह दुःख निरोध आर्य सत्य साक्षात् किया, भिक्षुओं ! यह मुझे पहले न सुने गये धर्मों में आँख उत्पन्न हुई..... ।

यह दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा आर्य सत्य है, भिक्षुओं ! यह मुझे पहले न सुने गये धर्मों में आँख उत्पन्न हुई..... ।

यह दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा अर्यसत्य भावना करनी चाहिए । भिक्षुओं ! मुझे न सुने हुए धर्मों में आँख उत्पन्न हुई..... ।

यह दुःख निरोधगामिनी प्रतिपदा भवना की । भिक्षुओं मुझे पहले न सुने हुए धर्मों में आँख उत्पन्न हुई

जब तक कि इन चार आर्य सत्यों का इस प्रकार से त्रिपरिवृत्त, बारह प्रकार का यथार्थ विशुद्ध ज्ञान दर्शन न हुआ, तब तक मैंने यह दावा नहीं किया कि—देवों सहित, मार सहित, ब्रह्मा सहित सारे लोक में, देव मनुष्य सहित, श्रमण ब्राह्मण सहित प्रजा में अनुत्तर सम्यक् सम्बोधि को जान लिया । भिक्षुओं ! जब इन चार आर्य सत्यों का.. ज्ञान दर्शन हुआ.. ।

तब मैंने भिक्षुओं ! दावा किया कि देवों सहित.....अनुत्तर सम्यक् सम्बोधि को मैंने जान लिया । मेरे अन्दर ज्ञान दर्शन उत्पन्न हुए, मेरी विमुक्ति अचल है, यह अन्तिम जन्म है, फिर अब आवागमन नहीं । भगवान् ने यह कहा । संतुष्ट हो पंचवर्गीय भिक्षुओं भगवान् के वचन का अभिनन्दन किया ।

इस व्याख्यान के कहे जाने के समय, आयुस्मान् कौण्डिन्य को जो

कुछ समुदय धर्म है वह सब निरोध धर्म है, यह विरज, बिमल धर्मचक्षु उत्पन्न हुआ।

भगवान् के धर्म—चक्र को प्रवर्तित करने पर भूमि पर रहने वाले देवताओं ने साधुवाद कहा — भगवान् ने यह वाराणसी के ऋषिपतन मृगदाय में अनुपम धर्म—चक्र को प्रवर्तित किया है, जो लोक में श्रमण, ब्राह्मण, देवता, मार, ब्रह्मा या किसी भी व्यक्ति से प्रवर्तित नहीं किया जा सकता।

भूमि पर रहने वाले देवताओं के शब्द को सुनकर चातुर्महाराजिक देवताओं ने साधुवाद कहा.....।

चातुर्महाराजिक देवताओं के शब्द को सुनकर त्रयस्त्रिंश देवताओं ने साधुवाद कहा.....।

त्रयस्त्रिंश देवताओं के शब्द को सुनकर यामा देवताओं ने.....।

यामा देवताओं के शब्द को सुनकर तुषित देवताओं ने.....। तुषित देवताओं के शब्द को सुनकर निर्माणरती देवताओं ने....। निर्माणरती देवताओं के शब्द को सुनकर परनिर्मितवशवर्ती देवताओं ने.....।

परनिर्मितवशवर्ती देवताओं के शब्द को सुनकर ब्रह्मपारिषद देवताओं ने.....।

ब्रह्मपारिषद देवताओं के शब्द को सुनकर ब्रह्मपुरोहित देवताओं ने।

ब्रह्मपुरोहित देवताओं के शब्द को सुनकर महा ब्रह्मा देवताओं ने....।

महा ब्रह्मा देवताओं के शब्द को सुनकर को परित्ताभ देवताओं ने ..।

परित्ताभ देवताओं के शब्द को सुनकर अप्रमाणभा देवताओं ने।

अप्रमाणभा देवताओं के शब्द को सुनकर आभास्वर देवताओं ने.....।

आभास्वर देवताओं के शब्द को सुनकर परित्रशुभ ।
परित्रशुभ देवताओं के शब्द को सुनकर अप्रमाणशुभ ।
अप्रमाणशभ देवताओं के शब्द को सुनकर शुभकृष्णक ।
शुभकृष्णक देवताओं के शब्द को सुनकर वृहत्फल देवताओं ने..... ।
वृहत्फल देवताओं के शब्द को सुनकर अविह देवताओं ने ।
अविह देवताओं के शब्द को सुनकर अतप्य देवताओं ने ।
अतप्य देवताओं के शब्द को सुनकर सुदर्श देवताओं ने..... ।
सुदर्श देवताओं के शब्द को सुनकर सुदर्शी देवताओं ने ।

सुदर्शी देवताओं के शब्द को सुनकर अकनिष्ठक देवताओं ने ।
इस प्रकार उसी क्षण में, उसी मुहुर्त में यह शब्द ब्रह्मलोक तक पहुंच गया
और यह दस सहस्री ब्रह्माण्ड काँप उठा, सम्प्रकम्पित हो गया और हिल
गया । देवताओं के प्रताप से भी बढ़कर बहुत भारी, महान् प्रकाश को लोक
में उत्पन्न हुआ ।

अब भगवान ने उदान वाक्य कहा—

ओहो ! कौण्डिन्य ने जान लिया । ओहो ! कौण्डिन्य ने जान लिया ।
इसीलिए आयुष्मान् कौण्डिन्य का आज्ञात कौण्डिन्य नाम पड़ा ।

Dhammacakkappavattanasuttam

Thus have I heard:

1. On one occasion the Blessed One was dwelling in the Deer Park at Isipatana near Varanasi (Benares). Then he addressed the group of five monks.

'Monks, these two extremes ought not to be practised by one who has gone forth from the house-hold life. There is addiction to indulgence of sense — pleasures, which is low, coarse the way of the ordinary people, unworthy, and unprofitable; and there is addiction to self mortification, which is painful, unworthy and unprofitable.

'Avoiding both these extremes, the Tathagata (The Buddha) has realized the Middle Path; it gives vision, gives knowledge, and leads to calm, to insight, to enlightenment and to Nibbana. And what is that Middle Path realized by the Tathagata ? It is the Noble Eightfold Path, and nothing else, namely: right understanding, right thought, right speech, right action, right livelihood, right efforts, right mindfulness and right concentration. This is the Middle Path realized by the Tathagata which gives vision; which gives knowledge, and leads to calm, to insight, to enlightenment, and to Nibbana.

2. ' The Noble Truth of suffering (dukkha), monks, is this : Birth is suffering, ageing is suffering, sickness is suffering, death is suffering, association with the unpleasant is suffering, dissociation from the pleasant is suffering, not to receive what one desires is suffering - in brief the five aggregates of grasping are suffering.

'The Noble Truth of the origin (Samudaya) of suffering is this : It is this which produces re-becoming accompanied by passionate greed, and finding fresh delight now here, and now there, namely craving for sense pleasure, craving for existence and craving for non-existence.

'The Noble Truth of the Cessation of Suffering (nirodha) is this : It is the complete cessation of that very craving, giving it up, relinquishing it, liberating oneself from it, and detaching oneself from it.

'The Noble Truth of the Path (magga) leading to the Cessation of Suffering is this: It is the Noble Eightfold Path, and nothing else, namely: right understanding, right thought, right speech, right action, right livelihood, right effort, right mindfulness, right concentration.

3. "This is the Noble Truth of Suffering": such was the vision, the knowledge, the wisdom, the science, the light that arose in me concerning things not heard before. "This suffering, as a noble truth, should be fully realized". (Parinneyyam) such was the vision the knowledge, the wisdom, the science, the light that arose in me concerning things not heard before "This suffering, as a noble truth has been fully realized". (Parinnatam) such was the vision, the knowledge the wisdom, the science, the light that arose in me concerning things not heard before.

'This is the Noble Truth of the Origin of Suffering": such was the vision, the knowledge the wisdom, the science, the light that arose in me concerning things not heard before. "This Origin of Suffering as a noble truth should be eradicated": (Pahatabbam) such was the vision, the knowledge, the wisdom, the science, the light that arose in me concerning things not heard before: "This Origin of suffering, as a noble truth has been eradicated": (Pahinam) such was the vision, the knowledge, the wisdom, the science, the light that arose in me concerning things not heard before.

"This is the Noble Truth of the Cessation of Suffering": such was the vision, the knowledge, the wisdom, the science, the light that arose in me concerning things not heard before. "This Cessation of suffering, as a noble truth, should be realized: (Saccikatabbam) such was the vision, the knowledge, the wisdom, the science, the light that arose in me concerning things not heard before. "This Cessation of suffering, as a noble truth has been realized":

(Saccikatam) such was the vision, the knowledge, the wisdom, the science, the light that arose in me concerning things not heard before.

"This is the Noble Truth of the Path leading to the Cessation of suffering' : such was the vision, the knowledge, the wisdom, the science, the light that arose in me concerning things not heard before. 'This Path leading to the cessation of suffering as a noble truth, should be developed": (Bhavetabbam) such was the vision, the knowledge, the wisdom, the science, the light that arose in me concerning things not heard before. "This Path leading to the cessation of suffering, as a noble truth, has been developed": (bhavitam) such was the vision' the knowledge, the wisdom, the science, the light that arose in me concerning things not heard before.

4. 'As long as my knowledge of seeing things as they really are, was not quite clear in these three aspects, in these twelve ways, concerning the Four Noble Truths I did not claim to have realized the matchless, supreme Enlightenment, in this world with its gods, with its Maras and Brahmas, In this community with its recluses and brahmanas with its Devas and humans. But when my knowledge of seeing things as they really are was quite clear in these three aspects, in these twelve ways, concerning the Four Noble Truths, then I claimed to have realized the matchless, supreme Enlightenment in this world with its gods, with its Maras and Brahmas, In this community with its recluses and brahmanas with its Devas and humans. And a vision of Insight arose in me thus : "Unshakable is the deliverance of my heart. This is the last birth. Now there is no more re-becoming.

This the Blessed One said. The group of five monks was glad, and they rejoiced at the words of the Blessed One.

5. When this discourse was thus expounded there arose in the Venerable Kondanna the passion — free, stainless vision of Truth (dhammacakkhu); in other words; he attained sotapatti,

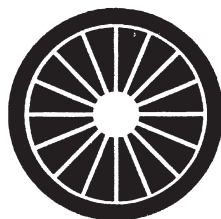
the first stage of sanctity: and realized: whatever has the nature of arising, has the nature of ceasing.'

Now when the Blessed One set in motion the Wheel of Dhamma the Bhummattha devas (the earth deities) proclaimed: 'The Matchless Wheel of Dhamma that cannot be set in motion by recluse, brahmana, deva, Mara, Brahma, or any one in the world, is set in motion by the Blessed One in the Deer Park at Isipatana near Baranasi.'

6. Hearing these words of the earth deities, all the Catummaharajika devas proclaimed: 'The Matchless Wheel of Dhamma that cannot be set in motion by recluse, brahmana, deva, Mara, Brahma, or any one in the world, is set in motion by the Blessed One in the Deer Park at Isipatana near Baranasi.' These words were heard in the upper deva realms, and from Catummaharajika it was proclaimed in Tavatimsa.. Yama... Tusita... Nimmanarati... Paranimmitavasavatti.. and the Brahmas of Brahma Parisajja..Brahma Purohita..Maha Brahma.. Parittabha.. Appamanabha.. Abhassara.. Parittasubha.. Appamanasubha.. Subhakinha.. Vehapphala. Aviha.. Atappa.. Sudassa. Sudassi. and in Akanitthaka. The Matchless Wheel of Dhamma that cannot be set in motion by recluse, Brahmana, Deva, Mara Brahma or any one in the world, is set in motion by the Blessed One in the Deer Park at Isipatana near Varanasi.'
7. Thus at that very moment, at that instant, the cry (that the Wheel of Dhamma is set in motion) spread as far as Brahma realm, the system of ten thousand worlds trembled and quaked and shook. A boundless sublime radiance surpassing the effulgence (power) of devas appeared in the World.

Then the Blessed One uttered this paeon of joy: ' Verily Kondanna has realized : verily Kondanna has realized (the Four Noble Truths), 'Thus it was that the Venerable Kondanna received the name, 'Anna Kondanna' — Kondanna who realizes.

बौद्ध-धर्म में आचार-पद्धति (ETHICS)



लेखिका: उपासिका श्रीमती आर. तुली

बुद्ध विहार भारतीय महाबोधि सभा, दिल्ली
सेन्टर का प्रकाशन-1997

मुद्रक:

बी.आर.पी.सी. (इण्डिया) लि., ए-6, निमड़ी कॉमर्शियल सेन्टर
भारत नगर के पास, अशोक विहार, दिल्ली-110052
दूरभाष: 7430113, 7143353 फैक्स: 091-011-7138265

जो धर्म की शरण में हैं
उनको नमन सहित
समर्पित

उपासिका आर. तुली

Printed and donated for free distribution by
The Corporate Body of the Buddha Educational Foundation
11F., 55 Hang Chow South Road Sec 1, Taipei, Taiwan, R.O.C.
Tel: 886-2-23951198 , Fax: 886-2-23913415

Email: overseas@budaedu.org

Website: <http://www.budaedu.org>

Mobile Web: m.budaedu.org

This book is strictly for free distribution, it is not for sale.

यह पुस्तिका विनामूल्य वितरण के लिए है बिक्री के लिए नहीं ।

प्रस्तावना

उपासिका श्रीमती आर० तुली बुद्ध-धर्म एवं दर्शन को सरल भाषा में सामान्य-जन तक पहुंचाने हेतु सदैव प्रयत्नशील रही हैं। उनके द्वारा लिखे गये अनेक लघु-ग्रन्थों को भारतीय महाबोधि सभा ने प्रकाशित किया है। उसी श्रृंखला में 2541वीं बुद्ध जयन्ती दिनांक 22 मई, 1997 के शुभ अवसर पर श्रीमती आर० तुली की प्रस्तुत पुस्तक 'बौद्ध-धर्म में आचार-पद्धति' (Ethics) बुद्ध-धर्म में रुचि रखने वाले सर्वसामान्य जनता को समर्पित है। इसमें ग्यारह अनुच्छेद हैं। प्रत्येक में भगवान बुद्ध के जीवनोपयोगी विचार को सटीक एवं प्रभावशाली ढंग से लिखा गया है।

शान्त, सुखी एवं सन्तोषपूर्ण जीवन के प्रति बुद्ध-धर्म के आचार बहुत उपयोगी हैं। प्रथम अनुच्छेद में ही बुद्ध-धर्म की उत्तमता की सुन्दर व्याख्या महासमुद्र से उसकी समानता बतलाते हुए की गई है। महासमुद्र के समान ही यह धर्म एकरस, गहन, दोष-मुक्त एवं महान है। 'अष्टांगिक-मार्ग' एवं 'पंचशील' की अवधारणा को बुद्ध-दर्शन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यवहारिक पक्ष समझा जाता है। 'ब्रह्म विहार' की साधना मानव जीवन एवं सांसारिक व्यवहारों के समस्त अन्तर्विरोधों को समाप्त कर देता है। भगवान बुद्ध ने प्रतिकूल वातावरण में भी पृथ्वी के समान शान्त रहने की शिक्षा दी है, निरन्तर प्रयत्नशील रहकर पंचशील की साधना करनी चाहिये। केवल प्रज्ञा से जीवन संतुलित नहीं हो सकता है। साधना एवं प्रज्ञा दोनों आवश्यक हैं। सदाचार से सम्पूर्ण समाज सुखमय हो जाता है।

बुद्ध-धर्म के अनुशासन में भेद भाव नहीं है। जाति, धर्म, लिंग, भाषा, रंग इत्यादि के आधार पर भेद के लिये कहीं भी स्थान नहीं है। अन्धविश्वासों के लिये स्थान नहीं है। सुख, शान्ति एवं समृद्धि के लिये पुरुषार्थ करना आवश्यक है। किसी अदृश्य-शक्ति में आस्था रखने से कुछ भी सम्भव नहीं है। बुद्ध-धर्म की नैतिक-शिक्षा को जन-जन तक पहुंचाने के लिये प्रियदर्शी धर्मराज सम्राट् अशोक ने भी अपने शिला-लेखों में पुरुषार्थ करते रहने पर विशेष बल दिया है। बुद्ध स्वप्रकाशित रहते हैं। उसी प्रकार सदाचार एवं शीलों का आचारण करने वाला व्यक्ति सर्वप्रकाशित होता है। मन एवं हृदय को शुद्ध तथा निर्मल रखना ही सुख का मार्ग है।

बुद्ध-दर्शन की इन समस्त मान्यताओं का अत्यन्त कुशलतापूर्वक सुबोध-ढंग से श्रीमती आर० तुली ने प्रस्तुत पुस्तक में विश्लेषण किया है। वह साधुवाद की पात्र हैं। मुझे विश्वास है कि इस पुस्तक की लोकप्रियता निरन्तर बढ़ती रहेगी।

सब्र दानं धम्मदानं जिनाति ।

भिक्षु डब्ल्यू. मेघानन्द थेरो ।

भिवखु-इन्वार्ज, भारतीय महाबोधि सभा
बुद्ध विहार, मंदिर मार्ग, नई दिल्ली-110001

दो शब्द

इस पुस्तक का, जिसमें मेरे कुछ लेखों की माला पिरोई गई है, प्रकाशित करने का इरादा नहीं था। आदरणीय मेघानन्द भन्ते और आदरणीय संघरत्न भन्ते के सहयोग और प्रेरणा से ही यह पुस्तक प्रकाशित हो रही है।

सम्माननीय विजितधम्म भन्ते की आभारी हूं जिन्होंने कुछ सुझाव दे कर अपनी उदारता का परिचय दिया।

भगवान बुद्ध से जो प्रकाश मिला उसकी कुछ किरणें इस पुस्तक में बिखरने का प्रयास किया है। आशा है पाठक गण उन किरणों के प्रकाश से लाभान्वित होंगे।

उपासिका

आर. तुली

अनुक्रम

1. बुद्ध धर्म में आठ अदभुत् गुण	6
2. सुख और शान्ति का मार्ग	10
3. सदाचार	14
4. अतुल	15
5. करुणा और प्रज्ञा	16
6. सन्तोष ही परम धन है	18
7. बुद्ध अपने प्रकाश में चमकता है	22
8. श्रद्धा	23
9. बन्धन	24
10. धर्म और समाज	25
11. क्या सन्यास आवश्यक है?	28

1. बुद्ध धर्म में आठ अद्भुत गुण

भगवान बुद्ध श्रावस्ती में मृगार माता के प्रासाद पूर्वाराम में विहार करते थे। उस समय उपोसथ के दिन भगवान, भिक्षु संघ के साथ प्रासाद में बैठे थे। रात बीत जाने पर आयुष्मान् आनन्द, भगवान के पास आ कर हाथ जोड़ कर, भगवान से बोले-

भन्ते! रात बीत गई। पहला पहर समाप्त हो गया, भिक्षु संघ आपका प्रातिमोक्ष उद्देश-प्रवचन सुनने के लिये आपकी प्रतीक्षा में बैठा है। कृपया चल कर भिक्षुओं के लिये प्रातिमोक्ष-प्रवचन दें।

उत्तर में भगवान चुप रहे !

रात बीत जाने पर दूसरा पहर भी समाप्त हो गया। भगवान नहीं आए। आयुष्मान् आनन्द, फिर उनके पास आए और दूसरी बार फिर भगवान के सम्मुख हाथ जोड़ कर बोले-

भन्ते! रात्रि का दूसरा पहर भी समाप्त हो गया। भिक्षु संघ देर से बैठा आपके प्रवचन की प्रतीक्षा कर रहा है। कृपया चल कर प्रातिमोक्ष-प्रवचन दें।

उत्तर में फिर भगवान चुप रहे।

रात्रि का अन्तिम पहर भी बीत गया, भगवान सभा में नहीं आए। आयुष्मान् आनन्द भगवान के पास फिर आ कर कर-बद्ध हो बोले-

भन्ते! अन्तिम पहर भी रात्रि का बीत गया। सूर्य निकल आया, उषा रात है। भिक्षु-संघ देर से बैठा है। आपकी प्रतीक्षा कर रहा है। कृपया चल कर भिक्षुओं के लिये प्रातिमोक्ष-प्रवचन दें।

भगवान ने कहा- आनन्द! यह परिषद् शुद्ध नहीं है।

आयुष्मान् मौद्गल्यायन ने सुना तो विचारने लगे कि किस व्यक्ति के लिये भगवान ने ऐसा कहा है कि परिषद् शुद्ध नहीं है। तब आयुष्मान् मौद्गल्यायन ने चित्त में ध्यान लगा भिक्षु संघ को देखा। आयुष्मान् मौद्गल्यायन का ध्यान उस पापी व्यक्ति पर गया जो दुःशील, दुराचारी, भीतर से विकृत छिप कर दुष्कर्म करने वाला, अश्रमण हो कर श्रमण का दावा करने वाला, अब्रह्मचारी होकर ब्रह्मचारी होने का दावा करने वाला, ऐसे दुःशील व्यक्ति को संघ में बैठे देखा। जहां वह पुरुष बैठा था, महामौद्गल्यायन वहां गये, और उस पुरुष से बोले-

आवुस! उठ, भगवान ने तुझे देख लिया है, तू यहां भिक्षुओं के साथ नहीं बैठ सकता ।

वह व्यक्ति वैसे ही चुप बैठा रहा, जैसे कुछ सुना ही नहीं । दूसरी बार फिर महामौद्गल्यायन उस पुरुष से बोले-

आवुस! उठ, भगवान ने तुझे देख लिया है । तू यहां भिक्षु-संघ में नहीं बैठ सकता । दूसरी बार भी वह व्यक्ति चुप रहा । तीसरी बार फिर आयुष्मान् महामौद्गल्यायन ने उस पुरुष से कहा-

आवुस! उठ, भगवान ने तुझे देख लिया है, तू यहां भिक्षुओं के साथ संघ में नहीं बैठ सकता ।

तीसरी बार भी वह दुराचारी चुप रहा ।

इस बार आयुष्मान् महामौद्गल्यायन ने उस दुःशील व्यक्ति को हाथ से पकड़कर उठाया और प्रधान द्वार से बाहर निकाल, अन्दर से बिलाई दे (चटखनी लगा) द्वार बन्द कर दिया, और भगवान के पास जाकर कर बोले-

भगवान! मैंने उस दुष्कर्मी पुरुष को भिक्षु-संघ से निकाल दिया है, परिषद शुद्ध है । कृपया भन्ते! भगवान! भिक्षु संघ के लिये प्रातिमोक्ष-प्रवचन दें ।

भगवान बोले- आश्चर्य है मौद्गल्यायन, अदभुत् है मौद्गल्यायन, जो हाथ पकड़ने पर वह मलिन, दुराचारी पुरुष गया ।

भगवान भिक्षु-परिषद में आए, भिक्षुओं को सम्बोधित कर बोले-

भिक्षुओं! बुद्ध-धर्म में आठ अदभुत् गुण हैं, बुद्ध-धर्म महासमुद्र के समान है जिसमें आठ अदभुत् गुण हैं, अनूठे गुण हैं, जिन्हें देख कर असुर, देवता गण प्रसन्न हो विनय-धर्म में अभिरमण करते हैं ।

बुद्ध धर्म में आठ अदभुत् गुण-

1. महासमुद्र किनारे से गहरा नहीं होता । क्रमशः भीतर, बीच में गहरा होता है । जितना गहरा होता है, उतना नीचा होता है, उतना झुका होता है । महासमुद्र क्रमशः गहरा होता है । महासमुद्र में यह प्रथम अदभुत् गुण है, अनूठा गुण है । जिसे देख कर असुर, देवतागण प्रसन्न हो, ऐसे महासमुद्र में अभिरमण करते हैं ।

इसी प्रकार धर्म-विनय, बुद्ध-धर्म में आठ अदभुत् गुण हैं, जिन्हें देखकर मेरे शिष्य इस धर्म-विनय बुद्ध-धर्म में रमण करते हैं । जैसे महासमुद्र क्रमशः गहरा होता है, एकदम किनारे से गहरा नहीं होता, ऐसे ही बुद्ध-धर्म में क्रमशः शिक्षा, क्रमशः क्रिया, क्रमशः मार्ग है । एकदम प्रारम्भ से ही

साक्षात्कार नहीं है। इस प्रकार बुद्ध-धर्म अदभुत धर्म है, अनूठा धर्म है। इसको क्रमशः-स्टेप-बाई-स्टेप, समझने के पश्चात् ही, अपने अन्तः को बदल सकते हैं। अन्तः बदलने के पश्चात् ही आचरण बदल सकता है। आचरण बदलने का अभिप्राय है, शील युक्त होना। जिसके आचरण में शील है, सर्व से प्रेम है, करुणा है, ऐसे व्यक्ति को मुक्ति के, निर्वाण के मार्ग का साक्षात्कार होता है। इस प्रकार ऐसे बुद्ध-धर्म-महासागर में, धर्म को समझने वाले असुर, देवता गण प्रसन्न हो अभिरमण करते हैं।

2. महासमुद्र स्थिर-धर्म है। किनारे को नहीं छोड़ता। जैसे महासमुद्र स्थिर धर्म है, किनारे को नहीं छोड़ता उसी प्रकार बुद्ध-धर्म में श्रावकों (शिष्यों) के लिये शील आदि आचार-नियम विहित किये गये हैं। अपने प्राणों के लिये भी मेरे शिष्य उन शील आदि आचार-नियम का उल्लंघन नहीं करते।
3. भगवान ने आगे बताया कि महासमुद्र मरे मुर्दे को अपने साथ नहीं रखता। महासमुद्र में जो मरा मुर्दा होता है, उसे महासमुद्र शीघ्र ही किनारे पर फेंक देता है। जिसे देख कर असुर, देवतागण प्रसन्न हो, उसमें अभिरमण करते हैं।

जिस प्रकार महासमुद्र मरे मुर्दे को अपने साथ नहीं रखता और शीघ्र ही किनारे पर फेंक देता है, वैसे ही जो व्यक्ति व्यभिचारी है, दुःशील है, छिप कर दुष्कर्म करने वाला है, अश्रमण हो श्रमण होने का ढोंग रचता है, अब्रह्मचारी हो ब्रह्मचारी होने का दावा करता है, कलुषरूप है ऐसे व्यक्ति को संघ अपने साथ नहीं रखता। संघ उसके साथ वास नहीं करता। संघ एकत्रित होकर उसे संघ से बाहर निकाल देता है वह यदि भिक्षु-संघ में बैठा हो, तो भी वह संघ से दूर है, और संघ उससे दूर है।

4. भगवान ने बताया कि महानदियां जैसे गंगा, यमुना, सरस्वती, सरयू, घाघरा आदि महासमुद्र में जा कर मिल जाती हैं और महासमुद्र में जाकर मिल जाने से, अपना नाम, गोत्र छोड़ देती हैं और महासमुद्र में मिलकर महासमुद्र का ही रूप धारण कर लेती हैं। अपना अस्तित्व खो देती हैं और महासमुद्र के साथ मिल कर महासमुद्र ही हो जाती हैं। उसी प्रकार भिक्षुओं क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शुद्र, ये चारों वर्ण तथागत द्वारा बताए हुए धर्म-विनय में, घर से बेघर प्रव्रजित (सन्यासी) हुआ व्यक्ति, संघ में प्रवेश पाकर, अपना नाम गोत्र छोड़ देता है और श्रमण के नाम से ही प्रसिद्ध होता है। इसे देख असुर, देवता गण प्रसन्न होते हैं और ऐसे महासागर रूपी बुद्ध-धर्म में अभिरमण करते हैं।
5. संसार में बहने वाली जो भी पानी की धाराएं, समुद्र में जाती हैं और जो कोई अंतरिक्ष से वर्षा की धाराएं, समुद्र में गिरती हैं, उससे महासमुद्र की

कमी अथवा पूर्णता नहीं दिखती, उसी प्रकार शीलवान व्यक्ति हो, निर्वाण पद के मार्ग में हों अथवा निर्वाण पद को प्राप्त हों, उससे बुद्ध-धर्म में निर्वाण पद की कमी अथवा पूर्णता नहीं दीख पड़ती। ऐसे बुद्ध-धर्म में देवता गण प्रसन्न हो अभिरमण करते हैं।

6. महासागर एक रस है। लवण ही उसका एक रस है।

जैसे महासागर एक रस है। लवण ही उसका एक रस है। उसी प्रकार बुद्ध-धर्म एक रस है। भावना, ध्यान, निर्वाण, मुक्ति ही उसका एक रस है जिससे असुर, देवतागण प्रसन्न हो इस धर्म-विनय बुद्ध-धर्म में प्रसन्न हो अभिरमण करते हैं।

7. भगवान बुद्ध ने फिर कहा- भिक्षुओं! महासमुद्र बहुत से रत्नों वाला है। महासमुद्र में तरह-तरह के रत्न हैं जैसे- मणि, मूंगा, मोती, रक्तवर्ण मणि, हीरे, सोना, चांदी आदि।

जैसे महासमुद्र में हीरा, मोती, मणि, सोना, चांदी, मूंगा आदि बहुत से रत्न हैं उसी प्रकार धर्म-विनय बुद्ध-धर्म बहुत से रत्नों वाला है। अनेक प्रकार के रत्नों वाला है। इसमें रत्न हैं- पंचशील, भावना, ध्यान, चार आर्य-सत्य, निर्वाण की प्राप्ति के लिये आर्य अष्टांगिक मार्ग आदि और भी बहुमूल्य रत्न हैं। ऐसे बुद्ध-धर्म में देवता गण प्रसन्न हो अभिरमण करते हैं।

8. भगवान ने महासमुद्र का आठवां गुण बताते हुए कहा- महासमुद्र महान् प्राणियों का निवास स्थान है। जैसे तिमिर, पिंगल, असुर, नाग, गन्धर्व आदि। महासमुद्र में सौ योजन वाले शरीर धारी भी हैं। दो सौ योजन वाले शरीर धारी भी हैं। तीन सौ योजन वाले शरीर धारी भी हैं। चार सौ योजन वाले शरीर धारी भी हैं। पांच सौ योजन वाले शरीर धारी भी हैं। इस प्रकार जैसे महासमुद्र में महान् प्राणियों का निवास है, ऐसे ही धर्म-विनय बुद्ध-धर्म में महान् प्राणियों का निवास है। यहां ये प्राणी निर्वाण के स्रोत की प्राप्ति रूपी फल के साक्षात्कार करने के मार्ग को प्राप्त होते हैं। निर्वाण को प्राप्त होते हैं। अर्हत्व फल के साक्षात्कार करने के मार्ग को प्राप्त होते हैं। अर्हत्व को प्राप्त होते हैं जिसे देख कर असुर, देवता गण प्रसन्न हो धर्म-विनय बुद्ध-धर्म में अभिरमण करते हैं।

भगवान कहते हैं, जो व्यक्ति महासमुद्र जैसे धर्म-विनय बुद्ध-धर्म को गहराई से समझता है उस व्यक्ति के अशुद्ध विचार, बुरे विचार और मलिन आचार धुल जाते हैं, शुद्ध हो जाते हैं। वह व्यक्ति अपने अन्तः को बदल कर अपने आचरण को निखारता है। वह शील युक्त हो कर अन्तः से झुक जाता है। जैसे वृक्ष की डाली फलों से लद जाती है तो झुक जाती है। उसी प्रकार

शीलवान व्यक्ति गहरे में जाकर शुद्ध चित्त हो अहंकार गिरा देता है अथवा यूँ कहें कि अहंकार स्वयं ही गिर जाता है और अहंकार से मुक्त हुआ व्यक्ति मान-अपमान में सम हो जाता है ।

मणि, मुक्ता, हीरा, मोती, सोना, चांदी, मूंगा आदि रत्न सांसारिक जीवन में व्यक्ति को आभूषण के रूप में सुशोभित करते हैं । बुद्ध-धर्म में पंचशील रत्न, भावना, ध्यान, चार आर्य-सत्य, आर्य अष्टांगिक मार्ग आदि रत्नों की माला जो व्यक्ति अपने आचार में, अपने व्यवहार में धारण करता है उसका व्यक्तित्व निखरता है । सांसारिक बन्धन से छूट निर्वाण प्राप्त करता है । भावना, ध्यान मेडिटेशन का अभ्यास कर एक रस हो जाता है और अर्हत्व को प्राप्त होता है ।

इस प्रकार भगवान बुद्ध का धर्म एक आविष्कार है । एक खोज है जो अदभुत है, अनूठी है । बुद्ध-धर्म मानवीय जीवन का गहनतम अध्ययन है । जिस समाज में सार्वजनिक रूप में बुद्ध-धर्म की मान्यता है अर्थात् सद्व्यवहार, सदाचार, एक दूसरे के प्रति प्रेम पूर्वक, शील युक्त, करुणामय व्यवहार, एक दूसरे के प्रति विश्वास आदि है, वह समाज स्वस्थ है । फलता है, फूलता है और उत्तरोत्तर उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होता है । अतः समाज को श्रेष्ठतम बनाने के लिये इन अदभुत, अनूठे गुणों को अपने आचार में, व्यवहार में लाना आवश्यक है । उसी में समाज का कल्याण है ।



2. सुख और शान्ति का मार्ग

कुछ लोगों की विचार धारा है कि बुद्धिज्म आज के युग में हमारे नित्य प्रति जीवन में लाना कठिन है । जबकि बुद्धिज्म इतना सीधा और सरल मार्ग है जिसका अभ्यास कर के हम अपने नित्य प्रति जीवन को सुखदायी और शान्तिमय बना सकते हैं ।

बौद्ध धर्म बड़ा प्यारा धर्म है । इसमें ऊंच नीच नहीं । कोई छोटा बड़ा नहीं । सब समान हैं । नित्य प्रति का जीवन जीने के लिये सीधा, सच्चा और सरल मार्ग है । जिसका स्वअनुभव से अभ्यास करके हम अपना नित्य प्रति, रोजमर्रा का जीवन सुखमय और शान्तिमय बना सकते हैं । यह धर्म केवल भिक्षुओं के लिये ही नहीं है, जैसा कि कुछ लोगों को भ्रान्ति है कि बुद्धिज्म बहुत कठिन धर्म है भिक्षुओं के लिये हैं संसार छोड़ कर बुद्ध विहार में जाना चाहिये अथवा पहाड़ों और एकान्त स्थान पर जा कर रहना चाहिये । नहीं! बुद्धिज्म, संसारियों के लिये, गृहस्थों के लिये भी समझने का है । गृहस्थों को बौद्ध धर्म को समझना

और अपने अन्दर धारण करना, अमल में लाना, आज के वैज्ञानिक युग में अति आवश्यक है जिससे मन को शान्ति मिल सकती है। भगवान बुद्ध के वचन केवल विहारों में भिक्षुओं के लिये ही नहीं हैं बल्कि आम व्यक्तियों, स्त्री हो अथवा पुरुष, के लिये हैं। जो घरों में अपने परिवार के साथ रहते हैं। आर्य अष्टांगिक मार्ग है जो बौद्धों के संसार में रहने का ढंग है। और यह मार्ग सबके लिये है बिना किसी भेद भाव के। यदि आर्य अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण नहीं कर सकते तो संसार में रहते हुए शान्ति का अनुभव नहीं कर सकते। मन में प्रसन्नता की सुगन्ध नहीं ला सकते।

आर्य अष्टांगिक मार्ग निम्न हैं-

1. सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वचन, सम्यक कर्म, सम्यक जीविका, सम्यक प्रयत्न, सम्यक स्मृति, सम्यक समाधि।

सम्यक (ठीक) दृष्टि है- मानसिक, काथिक और वाचिक, भले बुरे कर्मों का ठीक-ठीक ज्ञान होना।

भले बुरे कर्म इस प्रकार हैं-

बुरे कर्म	अच्छे कर्म
हिंसा	अहिंसा
चोरी	चोरी न करना
व्यभिचार	व्यभिचार न करना
मिथ्या वचन	सत्य वचन बोलना
चुगली	चुगली न करना
कटुवचन	कटुवचन न बोलना
लोभ	लोभ न करना
प्रतिहिंसा	प्रतिहिंसा से दूर रहना
झूठी धारणा आदि	झूठी धारणा न करना

दुःख निरोध के मार्ग का ठीक से ज्ञान होना ही ठीक दृष्टि है।

2. ठीक संकल्प - राग, प्रतिहिंसा रहित संकल्प को ही ठीक संकल्प कहते हैं। ठीक आचार कहते हैं।
3. ठीक वचन - कटु वचन, झूठ, चुगली अपनी भाषा में नहीं लाना। सच्चे और मीठे वचन बोलना।
4. ठीक कर्म - हिंसा, चोरी, व्यभिचार रहित कर्म ही ठीक कर्म हैं।

5. ठीक जीविका - झूठी जीविका छोड़ सच्ची जीविका से जीवन चलाना । शोषण करने वाली जीविका को भगवान बुद्ध ने हिंसात्मक जीविका कहा है । हिंसात्मक जीविका से जीवन चलाना गलत है ।
हथियार का व्यापार, प्राणि का व्यापार, मांस का व्यापार, मद्य का व्यापार; विष का व्यापार, सब गलत व्यापार हैं और परिमाण दुःख है ।
6. ठीक स्मृति - काया, वेदना, चित्त और मन के धर्मों की ठीक स्थितियों का ज्ञान । संसार में हर वस्तु क्षणिक है, अनित्य है । इसका स्मरण रखना । सदा चैतन्य रहना और होश में रहना । स्मृति बोध को जगाए रखना ।
7. ठीक प्रयत्न - इन्द्रियों पर संयम, बुरी भावनाओं को रोकना और अच्छी भावनाओं के उत्पादन का प्रयत्न-ठीक प्रयत्न है ।
8. ठीक समाधि - चित्त की एकाग्रता को समाधि कहते हैं । ठीक समाधि वह है जिससे मन के विचारों को हटाया जा सके । भगवान बुद्ध कहते हैं- बुराईयों का न करना और अच्छाईयों का सम्पादन करना, अपने चित्त का संयम करना ही ठीक समाधि है ।

मनुष्य स्वयं ही अपना जीवन नरक बनाता है । स्वयं ही अपना जीवन स्वर्ग बनाता है । जीवन स्वर्ग बनाने के लिये, सुखमय बनाने के लिये कुछ तो त्याग करना पड़ेगा । जैसे लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार नरक के द्वार हैं । प्रेम, करुणा, विनय स्वर्ग के द्वार हैं । लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार हम स्वयं अर्जित करते हैं और दुःखी होते हैं । यदि हम प्रेम, करुणा, विनय का अपने जीवन में अभ्यास करें तो सुख की, आनन्द की सुगन्ध हमें स्वयं ही आने लगेगी ।

बुद्ध धर्म में प्रार्थना में सबसे पहले त्रिशरण में जाते हैं-

बुद्धं सरणं गच्छामि ।
धम्मं सरणं गच्छामि ।
संघं सरणं गच्छामि ॥

बुद्ध सरणं गच्छामि का अर्थ है, मैं ज्ञान की शरण में जाता हूं। जब हमारे अन्दर ज्ञान का प्रकाश हो जाय तो स्वभावतः हमारे अन्दर का अन्धेरा मिट जायेगा। हमारे अन्दर के विकार मिट जायेंगे। जो हमारे चित्त में धूल जमा हो गई है साफ हो जायगी और स्वभावतः हमें अच्छे बुरे की पहचान होने लगेगी। हम जो बाहर की सांसारिक वस्तुओं को देख कर लालायित होते हैं—नहीं होंगे। प्रतिष्ठा पाने के लिये, उच्च पद पाने के लिये, हमारे अन्दर लोभ, मोह, अहंकार जागृत नहीं होंगे। ज्ञान के प्रकाश में होने से, इन सांसारिक वस्तुओं का प्रभाव हमारे अन्दर इतना नहीं होगा कि दुःख पैदा हो।

धम्मं सरणं गच्छामि— भगवान बुद्ध ने धर्म का अर्थ लिया है, नियम में चलना। जो प्रकृति का अटल नियम है उसकी शरण में जाते हैं। अपने को छोड़ते हैं और उस परम नियम की शरण ग्रहण करते हैं। जिससे हम पैदा हुए और जिसमें हम लीन हो जायेंगे। उसी नियम में रहते हुए चलेंगे।

जीवन का मूल आधार धर्म है। जब हम प्रकृति के नियमों में रहते हुए चलते हैं तो हमसे स्वभावतः गलत काम होना बन्द हो जाता है। हमसे कोई अनिष्ट नहीं हो सकता और सुख का संगीत बजने लगता है। चारों ओर सुख की सुगन्ध आने लगती है। यदि हमारा विचार अथवा काम नियम के विरुद्ध होगा तो सब गलत होगा और दुःख की छाया हमें घेरे रहेगी। जितना गलत होगा उतना दुःख होगा, पीड़ा होगी, गहन चिन्ता होगी। भगवान बुद्ध कहते हैं, दुःख कोई दण्ड नहीं, केवल गलत होने की सूचना है। कोई दण्ड नहीं देता, हम अपना ही किया, अपना ही बोया काटते हैं। प्रकृति के नियम से हटेंगे, बाहर होंगे तो दुःख होगा ही।

भगवान बुद्ध कहते हैं— जब तुम नियम को पहचान लोगे ज्ञान का द्वार खुल जायेगा। जब तक नियम को नहीं पहचाना भटकते रहोगे। दुःख का एक ही कारण है कि धर्म से कहीं डगमगा गये हैं। प्रकृति के नियम के अनुकूल चलना ही धर्म है। जो स्थिति जैसी है वैसी स्वीकार करना। जो वस्तु जैसी है उसको वैसी ही लेना। जब धर्म की पहचान हो जाती है तो ज्ञान का दीप जलता है और ज्ञान का प्रकाश होने से हम गलत रास्ते से वापिस लौट आते हैं। और सत्य क्या है उसका अनुभव कर पाते हैं।

संघं सरणं गच्छामि— मैं संघ की शरण में जाता हूं। अर्थात् संघ में जो भिक्षु ज्ञान की शरण में हैं और जो प्रकृति के नियमों के अनुसार चलते हुए निर्वाण पथ पर अग्रसर हो रहे हैं, मैं उनकी शरण ग्रहण करता हूं।

बुद्धिज्म में पंचशील का अनुकरण करना सिखाया है जो हमारे चरित्र को ऊंचा उठाने में सहायक है— हिंसा नहीं करना, चोरी नहीं करना, मिथ्या वचन नहीं बोलना, व्यभिचार नहीं करना, नशीली वस्तुओं का पान नहीं करना।

यदि हर व्यक्ति पंचशील का अभ्यास करे तो हमारे समाज में जो बुराईयां आ गई हैं, दूर हो जाय और सुख की वर्षा होने लगे ।

भगवान बुद्ध का बताया मार्ग सीधा है, सरल है, सच्चा है । इस मार्ग का अनुसरण करते हुए हम घर बैठे ही स्वअनुभव से सत्य का अनुभव कर सकते हैं । कहीं दूर इधर उधर जंगलों में, पहाड़ों में अथवा कभी इस गुरु के पास और कभी उस गुरु के पास भटकने की आवश्यकता नहीं है । स्थिर मन से भगवान बुद्ध के अमूल्य वचनों को समझ लें और अपने जीवन में क्रियात्मक रूप से उतार लें तो आनन्द ही आनन्द है ।



3. सदाचार

एक बार कोई उत्सव का दिन था । भगवान बुद्ध अपने शिष्यों सहित राजगृह नगरी में भिक्षा के लिये जा रहे थे । मार्ग में उन्हें पांच सौ लड़कों का ग्रुप मिला जो किसी बागीचे में पिकनिक मनाने जा रहे थे । उन लड़कों के पास मालपुओं से भरी कुछ टोकरियां थीं । उन लड़कों का मन था कि किसी बागीचे में जायेंगे, खेलेंगे, कूदेंगे और मालपुए खायेंगे ।

उन लड़कों ने जाते हुए मार्ग में भगवान बुद्ध को देखा, उनके शिष्यों को देखा, किन्तु उन लड़कों ने उन्हें कुछ मालपुए भेंट में नहीं दिये । किन्तु भगवान बुद्ध ने अपने शिष्यों से कहा— भिक्षुओं! आज तुम मालपुए खाओगे । और कहा कि जिनके हाथ में मालपुए हैं वे हमारे पीछे ही आ रहे हैं । ऐसा कह भगवान बुद्ध अपने शिष्यों सहित वहीं एक पेड़ की छाया में विश्राम के लिये बैठ गये ।

उसी समय थेर काश्यप दूसरी ओर से वहां आ गये । लड़कों ने उन्हें देखा— तो थेर काश्यप को श्रद्धांजली दी और सारे मालपुए थेर काश्यप को भेंट में दे दिये । थेर काश्यप ने लड़कों से कहा— मेरे गुरुजी बहुत महान् हैं, भगवान बुद्ध, अपने शिष्यों सहित उधर पेड़ के नीचे विश्राम कर रहे हैं । आप उनके पास जाओ और उन्हें ये मालपुए भेंट में दे दो । लड़कों ने वैसा ही किया और सारे मालपुए भगवान बुद्ध और उनके शिष्यों को भेंट में दे दिये । भगवान बुद्ध ने उनकी भेंट स्वीकार की और उन्हें आशीर्वाद दिया ।

भिक्षुओं ने आलोचना की और भगवान बुद्ध से कहा कि इन लड़कों ने थेर काश्यप का पक्ष लिया और हमारी ओर ध्यान नहीं दिया ।

भगवान बुद्ध ने अपने शिष्यों से कहा- सब भिक्षु, जो मेरे पुत्र काश्यप की तरह हैं, उनका देव लोक, मुन्य लोक- दोनों लोकों में आदर होता है, सम्मान होता है।

वह व्यक्ति, जो गुणी है, सदाचारी है, जिसके अन्दर ज्ञान का प्रकाश है, जिसने अपने अन्दर धर्म धारण कर लिया है, सत्य का अनुभव कर लिया है और अपने कर्तव्य को तत्परता के साथ निभाता है, उसको सब कोई प्यार देते हैं, आदर देते हैं, सम्मान देते हैं।



4. अतुल

एक बार अतुल नाम के गृहस्थ को धर्म सुनने की इच्छा हुई, और वह अपने पांच सौ साथियों के साथ थेर-रेवत के पास धर्म सुनने गये। थेर रेवत सिंह की भांति अकेले रहते थे। अतुल ने अपने साथियों सहित, थेर रेवत से धर्म प्रवचन सुनाने के लिये प्रार्थना की। थेर रेवत ने उनसे कुछ नहीं कहा और मौन रहे। अतुल और उसके साथियों को उनका मौन अच्छा नहीं लगा और बहुत असन्तुष्ट हुए। फिर वे थेर सारिपुत्र के पास गये जो बहुत विद्वान थे। और उनसे कहा- हम धर्म सुनने आए हैं, कृपया हमें धर्म पर प्रवचन दीजिये। थेर सारिपुत्र ने धर्म के ऊपर विस्तृत रूप से व्याख्या की, और धर्म को विस्तृत रूप से समझाने का प्रयत्न किया। यह इतनी लम्बी थका देने वाली धर्म की व्याख्या भी उन्हें नहीं जची। उनकी कुछ समझ में नहीं आया, अतः वहां भी उन्हें सन्तुष्टि नहीं हुई, तो अतुल और उसके साथी, थेर आनन्द के पास आए और कहा- भन्ते! हमें धर्म पर प्रवचन दीजिये। आपकी कृपा होगी। थेर आनन्द ने उन्हें संक्षेप में धर्म का सार बता दिया। इस पर भी अतुल और उसके साथी सन्तुष्ट नहीं हुए कि बहुत थोड़ा बताया है।

अन्त में वे भगवान बुद्ध के पास गये और कहा- भगवान! हम आपके पास धर्म सुनने आए हैं। कृपया हमें धर्म पर प्रवचन दें। आपके पास आने से पहले हम दूसरे शिक्षकों के पास गये किन्तु हमें किसी से सन्तुष्टि नहीं हुई हम थेर रेवत के पास गये, उन्होंने हमें कुछ नहीं बताया और मौन रहे। हम महामना सारिपुत्र के पास गये, वह धर्म के ऊपर इतना लम्बा और क्लिष्ट बोले कि थका देने वाला था। हमारी समझ में कुछ नहीं आया। फिर हम थेर आनन्द के पास गये। थेर आनन्द धर्म के ऊपर इतना संक्षेप में बोले कि हमें कुछ समझ में नहीं आया, वहां भी हमें अच्छा नहीं लगा।

भगवान बुद्ध ने उनसे कहा- मेरे शिष्यों! दूसरों को दोष देना कोई नई बात नहीं है। इस संसार में कोई व्यक्ति ऐसा नहीं, जो दूसरों को दोष न दे। राजे महाराजे और बुद्ध को भी लोग दोष देते हैं, मूर्ख व्यक्ति यदि दोष दे अथवा प्रशंसा करे उसका कोई मूल्य नहीं। यदि बुद्धिमान किसी को दोषी ठहराये तो वह दोषी है और यदि बुद्धिमान, प्रज्ञावान, सत्य में किसी की प्रशंसा करे तो वह प्रशंसा का पात्र है।

भगवान बुद्ध ने कहा- ए अतुल! यह पुराने समय से चला आ रहा है, जो चुप रहता है, मौन रहता है, लोग उसको दोष देते हैं। जो अधिक बोलता है, लोग उसको दोष देते हैं। जो कम बोलता है लोग उसको भी दोष देते हैं। इस संसार में ऐसा कोई प्राणी नहीं जिसकी निन्दा न होती हो या जिसको दोष न दिया जाता हो।

यदि व्यक्ति निर्दोष है और सत्य में प्रशंसा का पात्र है, बुद्धिमान, ज्ञानी और सद्गुणी उसकी प्रशंसा करेंगे। उसको दोषी कौन ठहरा सकता है जो शुद्ध सोने की तरह है? ऐसे व्यक्ति की ब्रह्मा भी प्रशंसा करते हैं।



5. करुणा और प्रज्ञा (धर्म के दो स्तम्भ)

धर्म में प्रज्ञा भी आवश्यक है। शील भी आवश्यक है। भगवान बुद्ध ने प्रज्ञा से शील को अधिक महत्त्व दिया है। शील के बिना प्रज्ञा खतरनाक हो सकती है। शीलवान व्यक्ति प्रज्ञावान होगा तो वह सोने में सुहागा है। शीलवान प्रज्ञावान होगा तो वह खतरे में पड़े हुए व्यक्ति की रक्षा कर सकता है। किन्तु शील रहित व्यक्ति में प्रज्ञा होने पर, प्रज्ञा का गलत प्रयोग कर सकता है। वह किसी की हत्या भी कर सकता है, चोरी कर सकता है, झूठ बोल सकता है, झूठी गवाही दे सकता है आदि। इसलिये भगवान बुद्ध ने प्रज्ञा से अधिक शील को महत्त्व दिया है।

भगवान बुद्ध के अनुसार, शील के पांच मूलाधार हैं। एक है जीव हिंसा से विरत रहना। दूसरा है चोरी नहीं करना। तीसरा है काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचार से विरत रहना। चौथा है, झूठ नहीं बोलना और पांचवा है नशीली वस्तुओं का पान नहीं करना।

शील के अनुसार ही ज्ञान का उपयोग होगा। शील के बिना ज्ञान का कोई मूल्य नहीं। इसलिये भगवान बुद्ध कहते हैं, अपने शील को शुद्ध करो। शील के बिना ज्ञान का कोई मूल्य नहीं, कोई महत्त्व नहीं। शील के अनुसार ही व्यक्ति

अपने ज्ञान का उपयोग करेगा । शील के अनुसार ही उसकी मनन शक्ति, उसका चिन्तन उच्च अवस्था में पहुँच सकेगा । संसार में शील के समान कुछ नहीं । सन्त कबीर ने भी कहा है कि “शीलवन्त सबसे बड़ा, सब रत्न की खान । तीन लोक की सम्पदा रही शील में आन” यदि व्यक्ति में शास्त्रों का ज्ञान नहीं है किन्तु शील की कसौटी में ठीक उतरता है तो उसका हर प्रकार से कल्याण ही कल्याण है । उसके लिये स्वर्ग का द्वार खुला है ।

आगे भगवान बुद्ध ने कहा है कि प्रज्ञा ही बौद्ध धर्म का आधार नहीं है । प्रज्ञा के साथ शील का होना अति आवश्यक है और शील के साथ करुणा, मैत्री, दया भाव का होना भी धर्म की आधारशिला है । प्रज्ञा और करुणा दोनों ही बौद्ध धर्म के प्रधान स्तम्भ हैं । प्रज्ञा है- निर्मल बुद्धि । प्रज्ञा में मिथ्या विश्वासों के लिये, अन्ध विश्वासों के लिये कोई स्थान नहीं ।

करुणा- दया, प्रेम, मैत्री भाव । इसके बिना समाज में खुशहाली नहीं हो सकती । समाज उन्नति नहीं कर सकता । बिना मैत्री भाव के समाज जीवित ही नहीं रह सकता । इसलिये भगवान बुद्ध ने प्रज्ञा के साथ करुणा को अपने धर्म का दूसरा स्तम्भ बताया है । प्रज्ञा और करुणा का सुन्दर सम्मिश्रण ही तथा गत का धर्म है ।

करुणा के साथ ही भगवान बुद्ध ने मैत्री की शिक्षा दी है । मैत्री का अर्थ है- समाज में हर प्राणी के लिये दया भाव रखना, प्रेम भाव रखना ।

उस समय भगवान बुद्ध श्रावस्ती में थे जब उन्होंने प्रवचन में मैत्री भाव पर बोलते हुए कहा कि मान लो एक आदमी पृथ्वी खोदता है किन्तु पृथ्वी उसका विरोध नहीं करती । मान लो एक आदमी आकाश में कई दूसरे रंगों से चित्र बनाता है, किन्तु वह चित्र बना नहीं सकता । जानते हो क्यों? क्योंकि आकाश काला नहीं है । इसी प्रकार तुम लोगों के मन में भी कालिख नहीं होनी चाहिये, जो कि तुम्हारे राग द्वेष का परिणाम है ।

अन्त में भगवान ने कहा कि जैसे पृथ्वी आघात सहती है, चोटें सहती है, विरोध नहीं करती, उसी प्रकार यदि तुम्हारा कोई अपमान कर दे, तुम्हारे साथ कोई अन्याय भी करे तो तुम विचलित मत होना । विरोधियों के प्रति मैत्री भाव अपनाए रखना । अपने मन को पृथ्वी की तरह दृढ़ रखना । विचलित नहीं होने देना । मैत्रीभाव का अभ्यास रखोगे, तो तुम्हारे साथ कोई कैसा भी अप्रीतिकर व्यवहार करे, तुम्हारा चित्त विचलित नहीं होगा । विरोधी लोग कुछ समय पश्चात् स्वयं ही थक कर शान्त हो जायेंगे ।

भगवान बुद्ध ने कहा- धर्म के मार्ग में कांटे हैं बहुत, किन्तु जो इन कांटों से नहीं घबराता, जो कांटों को सहना जान लेता है, धैर्य से, अभ्यास से, उसके

जीवन में व्यक्ति को दुःख का अनुभव नहीं होता । वह दुःख को भी सम करके जानता है । वह समय और परिस्थिति को देखते हुए दुःख को भी स्वीकार करता है और दुःख को भी सत्य करके जानता है, और दुःख के कारण को समझने का प्रयत्न करता है और फिर उसका निरोध करता है— शील के द्वारा, करुणा के द्वारा, मैत्री के द्वारा । और फिर वह स्वयं सुख में विचरता है ।

यदि शील के साथ, करुणा के साथ मनुष्य में ज्ञान हो तो वही मुक्ति का मार्ग है । मोक्ष का मार्ग है । परम आनन्द का मार्ग है ।



6. सन्तोष ही परम धन है (संतुष्टी परमं धनम्)

धम्मपद में भगवान् बुद्ध ने कहा है— आरोग्य से बढ़ कर लाभ नहीं । सन्तोष से बढ़कर धन नहीं ।

जिस व्यक्ति के पास संतोष-धन है, सन्तोषी है वह सुखी है । अर्थात् व्यक्ति के पास जितना है, उसमें जीवन जीना, आनन्दित होना । उसमें सुख भोगना । सन्तोषी जीवन जीना भी एक कला है । अपने पास जितना है या यूँ कहें कि अपने पास जितनी सामर्थ्य है उसमें संतुष्ट रहना, सुख अनुभव करना । सुख भोगना भी एक कला है । संतुष्ट होने का अभिप्राय है कि जो हमारे पास है उससे इतना सुख ले लें कि ओर की तृष्णा ही न रहे ।

निःसन्देह भगवान् बुद्ध ने कहा है— सन्तोष से बढ़कर धन नहीं, सन्तोष से बढ़कर सुख नहीं किन्तु साथ ही उन्होंने यह कभी नहीं कहा कि दरिद्र हो तो दरिद्र बने रहो और अपनी बेचारगी के आगे सिर झुका दो और अपने को समर्थ बनाने का प्रयास न करो अथवा श्रम न करो । नहीं! आत्म सम्मान के साथ जीना है । जहाँ भगवान् ने सन्तोष की महिमा बताई है वहाँ ऐश्वर्य का स्वागत भी किया है । दयनीय, दरिद्र परिस्थिति में रहना, प्रमाद में रहना है । आलसी जीवन जीना है ।

सुदत्त नाम का एक नागरिक, कोसल-जनपद की राजधानी श्रावस्ती में रहता था । सुदत्त राजा प्रसेनजित का श्रेष्ठी (खजान्ची) था । वह दीनों पर दया करने वाला और बड़ा दानी था । गरीबों को, दरिद्रों को बहुत दान दिया करता था, इसलिये उसका नाम अनाथपिण्डक पड़ गया ।

उस समय भगवान् बुद्ध राजगृह में ठहरे हुए थे । सुदत्त अपने किसी निजी काम से राजगृह गया । वहाँ उसने देखा कि उसका साला श्रेष्ठी, भिक्षु संघ तथा

भगवान बुद्ध को भोजन कराने के लिये बहुत बड़े पैमाने पर तैयारी कर रहा है। उसने सोचा या किसी विवाह की तैयारी है अथवा राजा को आमन्त्रित किया गया है।

जब उसे पता लगा कि भगवान बुद्ध अपने भिक्षु-संघ सहित भोजन के लिये आमन्त्रित हैं और उनके स्वागत समारोह के लिये सब तैयारियाँ हो रही हैं तो सुदत्त भगवान बुद्ध का दर्शन करने को उत्सुक हो उठा और वहाँ गया जहाँ भगवान बैठे थे।

भगवान बुद्ध ने निर्मल हृदय अनाथपिण्डक का प्यार भरे शब्दों में, सात्वतना भरे शब्दों में स्वागत किया।

अनाथपिण्डक ने भगवान से प्रार्थना की कि भगवान! मेरी शंका का निवारण करें और मुझे मेरे कर्तव्य का आदेश दें।

भगवान ने कहा-अनाथ पिण्डक! तुम्हारी शंका क्या है? कहो।

इस पर अनाथ पिण्डक बोले- भगवान! मेरे पास बहुत काम रहते हैं। मैंने बहुत धन इकट्ठा कर रखा है और कई कामों की चिन्ता रहती है। तो भी मैं, प्रसन्नता पूर्वक अपना कर्तव्य समझ कर अपने काम में मन लगा कर लगा रहता हूँ। मेरे नौकर चाकर, उनकी जीविका आदि मेरे ही व्यवसाय की सफलता पर निर्भर हैं।

मैंने सुना है कि आपके शिष्य प्रव्रज्या के सुखों के गुणों का गान करते हैं और गृहस्थ जीवन की निन्दा करते हैं, और कहते हैं तथागत ने अपना राज्य, ऐश्वर्य त्याग, सद्धर्म का पथ अपना निर्वाण का साक्षात्कार किया और सारे संसार को जन-कल्याण का, निर्वाण का मार्ग दिखाया।

भगवान! जो उचित हो मैं वही करना चाहता हूँ। मेरी उत्कट अभिलाषा है कि मैं अपने बन्धु बान्धवों की सेवा कर सकूँ। कृपया मुझे बताएँ कि मेरे लिये क्या उचित है। क्या मैं अपनी सम्पत्ति, अपने घर, अपने कारोबार, सब त्याग दूँ, और आपकी तरह ही सद्धर्म जीवन का सुख प्राप्त करने के लिये, घर से बेघर हो प्रव्रजित हो जाऊँ? कृपया मेरा पथ प्रदर्शन करें।

तथागत ने उत्तर में कहा- अनाथपिण्डक! धर्म-जीवन का सुख हर उस व्यक्ति के लिये प्राप्य है जो आर्य-अष्टांगिक मार्ग को समझ कर उसका अनुसरण करता है, जो आर्य-अष्टांगिक मार्ग के नियमों को अपने आचरण में लाता है। जो व्यक्ति धन से चिपटा है, धन का प्रयोग करना नहीं जानता और धन की आसक्ति से अपने हृदय को विषाक्त बनाता है उससे अच्छा है कि धन का त्याग कर दे। जिसकी धन में आसक्ति नहीं है और धन का उचित उपयोग

करता है, ऐसा आदमी अपने बन्धु-बान्धवों के लिये वरदान है। अतः मैं तो तुमसे यही कहूँगा कि निरासक्त होकर समृद्धि में जीवन जीओ और गृहस्थ बने रहो। अपने कारोबार में अप्रमादी हो, लगे रहो। आदमी का जीवन, ऐश्वर्य और अधिकार उसे अपना दास नहीं बनाते, वरन जीवन, ऐश्वर्य, और अधिकार के प्रति जो आदमी की आसक्ति है, वह उसे अपना दास बना लेती है। अतः सदा जागरूक रहो, चैतन्य रहो और समृद्धि में जीवन जीओ।

आगे भगवान ने कहा— आदमी जो चाहे करें। चाहे वे शिल्पी रहें, चाहे दुकान करें, व्यापार में हों, चाहे सरकारी नौकरी करें, अथवा संसार त्याग कर ध्यान भावना में रत रहें, उन्हें अपना कार्य पूरे मन से, लग्न से और भक्ति भाव से करना चाहिये। उन्हें परिश्रमी और उत्साही होना चाहिये। जीवन, संघर्ष है। संघर्ष से घबराओं नहीं। और हां! जीवन—संघर्ष में लगे रहने पर भी अपने मन में ईर्ष्या और घृणा को स्थान नहीं देना। संसार में रहते हुए स्वार्थी हो कर नहीं, परमार्थ भरा जीवन जो जीते हैं, वे सुख, शान्ति और आनन्द से भर जाते हैं।

इस प्रकार तथागत ने कहा— निरासक्त होकर समृद्धि में जीवन जीओ। उसमें सन्तोष है और शान्ति भी। शान्ति का अर्थ है सन्तोष। और जहां सन्तोष है, वहाँ समृद्धि भी है। यह कहने में उल्टा लगता है किन्तु सत्य है।

शान्तिमय, सुखी जीवन जीने के लिये ईमानदारी से, सच्चाई से, न्यायतः अर्जित किया हुआ धन, मनुष्य में आत्म विश्वास पैदा करता है। किसी प्रकार का भय नहीं होता और दरिद्रता दूर होती है। दरिद्रता दूर होने से आत्म सम्मान की भावना बढ़ती है। आत्म सम्मान में अहंकार की बू नहीं होती। सत्य में अहंकार की बू नहीं। झूठ में अहंकार की बू आती है।

सच्चाई से अर्जित धन से, गृहपति, श्रमणों को, साधु सन्तों को दान देता है। विनम्र हो कर रहता है। ऐसे व्यक्ति का मन शान्त है संयत है और सुखी है।

ऐसा व्यक्ति धार्मिक है। और धार्मिक व्यक्ति को असन्तोष होता है, अपने स्वयं के विकास के लिये। अपने अन्तः को शुद्ध करने के लिये। सर्व के प्रति प्रेम भाव विकसित करने के लिये। अपने आचरण को अच्छा बनाने के लिये। इस प्रकार अपने प्रयास से ऐसा व्यक्ति धार्मिक हो जाता है।

अधार्मिक व्यक्ति दूसरों को अच्छी स्थिति में देख कर जलता है। अपने को ईर्ष्या द्वेष से भरता है। एक धनी व्यक्ति था। उसके पास बहुत धन था। उसने अपनी इच्छानुसार, अच्छी जगह पर बहुत सुन्दर भव्य मकान बनवाया। उसमें सुन्दर फर्नीचर, कालीन आदि और अन्य वस्तुओं से उसे सुसज्जित किया और अपनी पत्नी और बच्चों के साथ उसमें रहने लगा। वह अपने मकान को देख

कर बहुत प्रसन्न होता कि मेरा मकान सबसे सुन्दर है, बड़ा है, भव्य है। उसका जो भी मित्र आता, उसे अपना मकान दिखाता और बहुत प्रसन्न होता। कुछ समय उपरान्त उसके एक मित्र उसके यहाँ आए, तो वह कुछ उदास और चुप-चुप था। तो उस मित्र ने पूछा- भाई बात क्या है? आज हमें अपना मकान नहीं दिखाओगे? तो उस धनी व्यक्ति ने कहा, अब मकान क्या दिखाऊँ देखते नहीं, मेरे घर के सामने ही, मेरे घर से भी बड़ा मकान एक अन्य व्यक्ति ने बना लिया है। अब वह व्यक्ति परेशान है, और उसे ईर्ष्या हो रही है कि मेरे घर से भी बड़ा मकान उस अन्य व्यक्ति ने कैसे बना लिया। जिस व्यक्ति में सन्तोष है या सन्तोषी जीवन जीता है, वह व्यक्ति सागर की तरह गहरा होता है। उथला नहीं होता। लोभी नहीं होता। उसमें ईर्ष्या द्वेष नहीं होता।

भगवान ने कहा है-तृष्णा और लोभ से असन्तोष पैदा होता है। किसी भी प्रकार की इच्छा होने से, तृष्णा होने से, व्यक्ति लाभ के पीछे भागता है। लाभ की कामना करने से, काम और राग उत्पन्न होते हैं। काम और राग उत्पन्न होने से, वस्तुओं का संग्रह करने की प्रवृत्ति बढ़ती है, जो लालच का प्रतीक है। वस्तु-संग्रह करने से उसके लिये मलकियत का भाव पैदा होता है और मलकियत से संग्रह की हुई संपत्ति के लिये, राग, आसक्ति पैदा होती है, और आसक्ति से अकुशल धर्म पैदा हो जाते हैं। जैसे लड़ाई-झगड़ा, कलह आदि।

जिसके अन्दर सन्तोष जाग गया, उसके अन्दर तृष्णा नहीं रहती और जिसके अन्दर तृष्णा न रही जो कि सब दुःखों का मूल है, उस व्यक्ति को सुख से कोई वंचित नहीं कर सकता। जागृत अवस्था में, तृष्णा रूपी चोर मनुष्य के अन्तः में प्रवेश नहीं पा सकता। जो व्यक्ति लोभ और तृष्णा के वशीभूत है, उसके पास कितना भी धन आ जाये, कितनी भी बड़ी से बड़ी कुर्सी, पद, प्रतिष्ठा मिल जाये, वह व्यक्ति कभी भी सन्तोष में नहीं हो सकता, क्योंकि फिर उसको उससे भी बड़ा पद, प्रतिष्ठा चाहिये। वह व्यक्ति भूल जाता है कि ये सब वस्तुएँ अल्प समय के लिये प्रसन्नता देती हैं। क्षणिक हैं। इस प्रकार तृष्णा बढ़ती जाती है, लोभ बढ़ता जाता है और जहाँ लोभ है, तृष्णा है वहाँ सन्तोष-धन कभी भी नहीं टिकता।

लोभ से आसक्ति पैदा होती है और आसक्ति से भय पैदा होता है, दुःख पैदा होता है। जो व्यक्ति लोभ से, आसक्ति से मुक्त है, उसे न दुःख है, न भय।

जो शीलवान है, प्रज्ञावान है, सत्यवादी है, न्यायप्रिय है और अपना कर्तव्य पूरा करता है, ऐसे व्यक्ति की समाज में इज्जत होती है और सबसे प्रेम पाता है। ऐसा व्यक्ति जहाँ भी जाये उसका स्वागत होता है।

सन्तोष-धन अपने भीतर अर्जित करने के लिये, सन्तोष का फूल अपने अन्दर खिले, इसके लिये ध्यान का अभ्यास आवश्यक है। ध्यान के अभ्यास से मन शान्त होता है, कोई दुविधा नहीं रहती और सुख अनुभव होता है।

परिश्रम से, सच्चाई से, ईमानदारी से, न्यायतः धन समृद्धि अर्जित करके, निरासक्त होकर समृद्धि में जीवन जीओ, उसमें सन्तोष है और शान्ति भी । शान्ति का अर्थ है सन्तोष और जहाँ सन्तोष है वहाँ समृद्धि है। परम आनन्द है ।

आरोग्या परमा लाभा

सन्तुष्टी परमं धनम्



7. बुद्ध अपने प्रकाश में चमकता है

आश्विन मास की पूर्णमासी का दिन था । कोसल राजा पसेनदि भगवान बुद्ध के दर्शनार्थ उनके स्थान पर गया । राजा पसेनदि उस समय अपनी शाही पोशाक में था, जिस पर हीरे जवाहरात चमक रहे थे । उस समय सम्माननीय थेर कालुदायी भी वहाँ उपस्थित थे । उसी कमरे में एक तरफ हो गहरे ध्यान में बैठे थे । उनके शरीर से सुनहरी किरणें जैसे फूट रही थीं । सम्माननीय आनन्द ने आकाश की ओर देखा- सूर्य अस्त हो रहा था । चाँद निकल रहा था । सूर्य और चाँद आकाश में अपनी प्रज्वलित किरणों के प्रकाश से चमक रहे थे ।

आदरणीय आनन्द, यह दृश्य देख कर अचम्भित हुआ । राजा की चमकती हुई पोशाक को देखा । थेर कालुदायी के शरीर की चमक को, आभा को देखा । सूर्य और चाँद के चमकते हुए उज्ज्वल प्रकाश को देखा और अन्त में आनन्द ने भगवान बुद्ध को देखा तो देखता ही रह गया । अचानक उसने पाया कि भगवान बुद्ध उन सबके उज्ज्वल प्रकाश से कहीं अधिक चमक रहे हैं । उनके उज्ज्वल प्रकाश की शोभा के सम्मुख उन सबकी शोभा, सबकी चमक फीकी पड़ रही है ।

आनन्द से न रहा गया और उसी समय भगवान बुद्ध से पूछा कि भगवान! आपके सुन्दर शरीर से इस समय जो प्रकाश की किरणें फूट रही हैं, जो आभा झलक रही है, वह आभा कहीं अधिक है राजा की पोशाक की चमक से, थेर कालुदायी के शरीर की चमक से, सूर्य और चन्द्रमा के उज्ज्वल प्रकाश में भी वह आभा नहीं दिखाई देती जो आभा और प्रकाश की झलक आपके शरीर में है ।

भगवान बुद्ध ने कहा- आनन्द! दिन के समय सूर्य चमकता है । रात को आकाश में चाँद चमकता है । राजा अपनी हीरे जवाहरात से जड़ित पोशाक में चमकता है । समाधि से अरहत (योगी) चमकता है किन्तु बुद्ध अपने प्रकाश में सदा दिन और रात चमकता है ।



8. श्रद्धा

राग, वासना से बढ़ कर कोई आग नहीं । द्वेष, ईर्ष्या से बढ़कर कोई जकड़न नहीं, अज्ञानता से बढ़कर कोई जाल नहीं । तृष्णा, इच्छा से बढ़कर कोई नदी नहीं ।

एक बार भगवान बुद्ध जेतवन बिहार में प्रवचन दे रहे थे । उनके कई शिष्य गण उनका प्रवचन बड़ी श्रद्धा से सुन रहे थे । उस समय उनके पाँच गृहस्थ शिष्य भी वहाँ उपस्थित थे किन्तु उनका मन प्रवचन सुनने में नहीं था । एक शिष्य बैठा-बैठा सो रहा था । दूसरा शिष्य अपनी उंगली के साथ धरती पर लकीरें खींच रहा था । तीसरा, वृक्ष के पास बैठा वृक्ष को हिला रहा था । चौथा शिष्य आकाश की ओर देख रहा था । किन्तु पाँचवा शिष्य अकेला था जो बड़े ध्यान से श्रद्धापूर्वक भगवान बुद्ध के धर्म प्रवचन को सुन रहा था और समझ रहा था ।

सम्माननीय आनन्द ने जो भगवान बुद्ध को पंखे से हवा कर रहे थे, उन पाँचों गृहस्थ शिष्यों के व्यवहार को देखा और भगवान से पूछा कि भगवान! जब आप इतना सुन्दर, सुरुचिपूर्ण और महत्त्वपूर्ण धर्म प्रवचन दे रहे थे, उस समय इन पाँच शिष्यों के व्यवहार अलग-अलग थे- एक सो रहा था, दूसरा पृथ्वी पर अपनी उंगली से लकीरें खींच रहा था, तीसरा वृक्ष के पास बैठा वृक्ष को हिला रहा था, चौथा आकाश की ओर देख रहा था, पाँचवां शिष्य अकेला था जो आपके प्रवचन को श्रद्धापूर्वक ध्यान से सुन रहा था । और पूछा कि भगवान! ऐसा उनका व्यवहार अलग-अलग क्यों था?

भगवान बुद्ध ने उत्तर दिया- आनन्द, यह इन लोगों की पुरानी आदत है, पुराने संस्कार हैं । ये अपनी पुरानी आदत नहीं छोड़ सके । जो पहला व्यक्ति था वह अपने पिछले जन्म में सांप था । सांप कुंडली मारता है । और सो जाता है । दूसरा व्यक्ति जो अपनी उंगलियों से, जमीन कुरेद कर लाइनें लगा रहा था वह अपने पिछले जन्म में ज़मीन का कीड़ा था । जो व्यक्ति पेड़ हिला रहा था, वह अपने पिछले जन्म में बन्दर था । जो व्यक्ति आकाश की ओर देख रहा था वह अपने पिछले जन्म में नक्षत्रों का जानकार था । और जो धर्म-प्रवचन को श्रद्धा से सुन रहा था वह अपने पिछले जन्म में कोई बहुत बिद्वान ज्योतिषाचार्य था । इसलिये आनन्द! धर्म को बड़े ध्यान से श्रद्धापूर्वक समझने का प्रयत्न करना चाहिये ।

आनन्द ने बुद्ध से पूछा— भगवान! वे कौन सी ऐसी चीजें हैं जो व्यक्ति को धर्म को समझने से रोकती है? धर्म को अपने अन्दर धारण करने से रोकती हैं? इसके उत्तर में भगवान बुद्ध ने बताया कि आनन्द! राग, वासना, ईर्ष्या-द्वेष और मोह-आसक्ति ये तीन वस्तुएँ हैं जो मनुष्य को अपने अन्दर धर्म धारण करने से, अपने अन्दर धर्म लेने से रोकती हैं। भगवान बुद्ध ने फिर कहा कि आनन्द! राग, वासना मनुष्य को जला देती है। राग वासना से बढ़ कर कोई अग्नि नहीं। ईर्ष्या द्वेष से बढ़कर कोई जकड़न नहीं। अज्ञानता से बढ़ कर कोई जाल नहीं। तृष्णा, इच्छा से बढ़कर कोई नदी नहीं। इसलिये श्रद्धापूर्वक धर्म को समझने का प्रयत्न करना चाहिये। श्रद्धा से ही मनुष्य अपने अन्दर धर्म को धारण कर सकता है।



9. बन्धन

एक दिन श्रावस्ती में तीस भिक्षु भिक्षा पात्र लिये भिक्षाटन के लिये जा रहे थे। मार्ग में उन्होंने देखा कि कुछ कैदी हाथ और पैरों में लोहे की जंजीरों से बंधे हुए जेल से बाहर पेरोल के लिये ले जाये जा रहे थे।

भिक्षु जब अन्नदान ग्रहण कर वापिस लौटे तो सन्ध्या समय भगवान बुद्ध के पास गये और बताया कि भगवान! आज प्रातः जब हम भिक्षाटन के लिये जा रहे थे तो हमने कुछ कैदियों को लोहे की जंजीरों में और हथकड़ियों में जकड़ा हुआ देखा। फिर उन्होंने पूछा—भगवान! क्या इससे भी मजबूत कोई और बन्धन है? भगवान बुद्ध ने उत्तर दिया हाँ! इससे भी कहीं बढ़कर और मजबूत बन्धन है। उनके सम्मुख ये लोहे की जंजीरें और हथकड़ियाँ तो कुछ भी नहीं। इच्छा-क्रेविंग, खाने पहनने की इच्छा, धन की इच्छा, यश की इच्छा, परिवार की इच्छा आदि ये सब बड़े मजबूत बन्धन हैं। इच्छा शक्ति हज़ार गुणा मजबूत हैं इन लोहे की जंजीरों से, हथकड़ियों से और जेल की दीवारों से।

भगवान बुद्ध ने कहा बुद्धिमान व्यक्ति इच्छाओं का दमन करते हैं, इच्छाओं को काटते हैं। संसार की अनित्य वस्तुओं में, चमक दमक में उलझते नहीं। बुद्धिमान व्यक्तियों के लिये जंजीरें लोहे की हों अथवा लकड़ी की, इतनी मजबूत नहीं हैं, जितनी धन, हीरे, जवाहरात की लालसा, आसक्ति, बच्चों और पत्नी का बन्धन। ये बन्धन सबसे अधिक मजबूत है। और ये बन्धन व्यक्ति को नैतिकता से नीचे गिरा देते हैं जो व्यक्ति उन बन्धनों में बन्ध जाता है उसका उस बन्धन से निकलना कठिन हो जाता है। और जो व्यक्ति उस

इच्छा शक्ति को, उस इच्छा के बन्धन को काट देता है वह निर्वाण के मार्ग में अग्रसर हो जाता है। उसके लिये मुक्ति का मार्ग आसान हो जाता है।



10. धर्म और समाज

भगवान बुद्ध का धर्म-शास्ता का धर्म, मानवीय जीवन का गहनतम अध्ययन है। खुदा का इल्हाम नहीं। भगवान बुद्ध का धर्म मानवीय अधिकार पर जीवित रहने वाला धर्म नहीं। मानवीय अधिकार पर जीवित रहने वाला धर्म, धर्म नहीं है अन्धविश्वास है।

भगवान बुद्ध के धर्म में अन्धविश्वास के लिये स्थान नहीं है। धर्म को पाने के लिये स्वयं को प्रयास करना होता है। धर्म कोई ऐसी वस्तु नहीं जो हाथों हाथ दी जा सके। धर्म का मार्ग दिखाया जा सकता है। ज्ञान दिया जा सकता है किन्तु उसको आत्मसात करने के लिये स्वयं को क्रियात्मक प्रयास करना होता है।

आज मज़हब या धर्म व्यक्तिगत चीज़ कहा जाता है। सामाजिक नहीं। लोगों की मान्यता है कि धर्म या मज़हब व्यक्तिगत होना चाहिये, सार्वजनिक नहीं जबकि धर्म को व्यक्तिगत रूप में सीमित न रख कर सामाजिक रूप, सार्वजनिक रूप देना अति आवश्यक है। मानव अकेला नहीं, सारे समाज का अंग है। अतः सारे समाज में धर्म की आवश्यकता है। धर्म अर्थात् सद् व्यवहार, सदाचार। समाज में एक दूसरे के प्रति अच्छा व्यवहार। एक दूसरे के प्रति विश्वास। हम समाज में हर क्षेत्र में एक दूसरे के साथ सम्बन्धित हैं। जहाँ दो व्यक्ति भी एक साथ रहते हों- उनमें धर्म होगा तो एक दूसरे के साथ प्रेमपूर्वक, अच्छा व्यवहार करते हुए शान्तिपूर्वक सुख से रह सकेंगे। बिना धर्म के समाज का काम चल ही नहीं सकता। जीवन में सुख और शान्ति से रहने के लिये समाज में सार्वजनिक रूप में धर्म का होना अति आवश्यक है। जहाँ धर्म नहीं होगा वहाँ एक दूसरे के प्रति संशय भाव बना रहेगा। संशय भाव का अर्थ है, हम एक दूसरे के प्रति विश्वास नहीं कर सकते। ऐसी अवस्था में हम सहज भाव से कोई काम नहीं कर सकते। जहाँ सहजता नहीं है, वहाँ एक दूसरे के प्रति मित्र भाव हो ही नहीं सकता। मित्र भाव के लिये धर्म का होना आवश्यक है। अतः धर्म वैयक्तिक ही नहीं अपितु सार्वजनिक होना अनिवार्य है।

भगवान बुद्ध ने हमें जो कुछ सिखाया मनुष्य की हैसियत से, स्व अनुभव से, स्वयं खोज करके सिखाया। अपने धर्म शासन में, लथागत ने अपने लिये विशेष स्थान सुरक्षित नहीं रखा। भगवान बुद्ध ने अपना कोई उत्तराधिकारी भी नहीं

बनाया । भगवान बुद्ध का अपना स्थान था । धर्म का अपना । भगवान बुद्ध के अनुयायियों ने उनसे प्रार्थना की कि किसी को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दें किन्तु भगवान बुद्ध का कहना था कि धर्म ही धर्म का उत्तराधिकारी है । धर्म को अपने ही तेज से जीवित रहना चाहिये, किसी मानवीय अधिकार के बल से नहीं । किसी मानवीय अधिकार पर जीवित रहने वाला धर्म, धर्म नहीं है । अन्ध विश्वास है ।

भगवान बुद्ध का धर्म एक आविष्कार है । एक खोज है- मनुष्य के रूप में । भगवान बुद्ध का धर्म मानवीय जीवन का गहनतम अध्ययन है ।

भगवान बुद्ध के धर्म में अन्धविश्वास के लिये स्थान नहीं है । धर्म को पाने के लिये स्वयं को प्रयास करना होता है । भगवान बुद्ध के अनुसार करुणा और प्रज्ञा धर्म के दो प्रधान तत्व हैं । प्रज्ञा अर्थात् बुद्धि-निर्मल बुद्धि । जहाँ शुद्ध बुद्धि होगी वहाँ अन्धविश्वास, मिथ्या विश्वास के लिये स्थान नहीं है । करुणा का अर्थ है- प्रेम, दया, मैत्री भाव । इसके बिना समाज जीवित नहीं रह सकता । न ही समाज उन्नति कर सकता है ।

इस प्रकार मज़हब और धर्म में इतना ही अन्तर है कि मज़हब- रिलीजन व्यक्तिगत वस्तु है किन्तु धर्म - भगवान बुद्ध का धर्म सामाजिक वस्तु है । बिना धर्म के समाज जीवित नहीं रह सकता । बिना धर्म के समाज में उन्नति सम्भव नहीं और न ही सुख और शान्ति सम्भव है ।

एक बार भगवान बुद्ध जब मल्लों के नगर अनुपिय में विहार कर रहे थे- एक दिन प्रातः चीवर पहन, पात्र हाथ में ले अनुपिय नगर में भिक्षाटन के लिये निकले ।

मार्ग में उन्हें लगा कि अभी सवेरा है अतः भिक्षाटन के लिये थोड़ी देर रुकना चाहिये । ऐसा सोच, तथागत भगव परिब्राजक के आश्रम में चले गये ।

भगवान बुद्ध को आता देख भगव-परिव्राजक उनके स्वागत के लिये उठ खड़ा हुआ । उनका अभिवादन किया और उन्हें सुसज्जित उच्च आसन पर बैठाकर स्वयं उनके पास एक ओर नीचा आसन ले कर बैठ गया । इस प्रकार बैठ कर भगव परिब्राजक ने कुशल क्षेम पूछ, भगवान बुद्ध से कहा- हे श्रमण गौतम! कुछ दिन हुए सुनक्खत लिच्छवी मेरे पास आया था । कहता था कि मैंने श्रमण गौतम का शिष्यत्व त्याग दिया है । क्या जैसा उसने कहा ठीक है?

हाँ भगव! ऐसा ही है, जैसा सुनक्खत लिच्छवी ने कहा । तथागत ने आगे कहा- कुछ दिन हुए सुनक्खत लिच्छवी मेरे पास आया था और कहने लगा कि मैं तथागत के शिष्यत्व का त्याग करता हूँ क्योंकि तथागत सामान्य व्यक्तियों से परे कोई चमत्कार नहीं दिखाते ।

इस पर मैंने कहा- सुनखत! क्या मैंने तुझसे कभी कहा था कि आ तू मेरा शिष्य बन जा, मैं तुझे सामान्य व्यक्तियों की शक्ति से परे चमत्कार दिखाऊंगा?

नहीं भगवान् आपने तो ऐसा नहीं कहा था। सुनखत ने उत्तर दिया।

मैंने उससे कहा- सुनखत! मेरे धर्म का उद्देश्य चमत्कार दिखाना नहीं है। मेरे धर्म का उद्देश्य यही है कि जो मेरे धर्म के अनुसार आचरण करेगा वह अपने दुःखों का नाश कर सकेगा।

सुनखत ने फिर कहा- भगवान्! आप सृष्टि के आरम्भ का पता भी नहीं देते। इस पर मैंने फिर कहा- सुनखत! क्या मैंने कभी तुझसे कहा था कि आ तू मेरा शिष्य बन जा, मैं तुझे सृष्टि के आरम्भ का पता बताऊंगा?

सुनखत ने कहा- नहीं भगवान् आपने तो ऐसा नहीं कहा था।

मैंने उससे कहा- सुनखत! मेरे धर्म का उद्देश्य सृष्टि के आरम्भ का पता बताना नहीं है। मेरे धर्म का उद्देश्य यही है कि जो मेरे धर्म के अनुसार आचरण करेगा, जो मेरे धर्म को क्रियात्मक रूप से अपने अन्दर ढाल लेगा, वह अपने दुःखों का नाश कर सकेगा।

मैंने कहा- सुनखत! मेरे धर्म के उद्देश्य की दृष्टि में इसका कोई महत्व नहीं कि चमत्कार दिखाया जाये या नहीं। सृष्टि के आरम्भ का पता बताया जाय या नहीं।

मज़हब या रिलीजन में महत्त्व दिया जाता है आत्मा, परमात्मा, प्रार्थनाएँ, पूजा, कर्मकाण्ड, रीति रिवाज, यज्ञ, बलि कर्म, चमत्कार आदि। मज़हब में नैतिकता को इतना महत्त्व नहीं। किन्तु धर्म में नैतिकता का वही स्थान है जो मज़हब में ईश्वर का। धर्म में प्रार्थना के लिये, कर्म काण्ड के लिये, तीर्थ यात्रा के लिये, रीति रिवाज के लिये, बलि आदि के लिये कोई स्थान नहीं। नैतिकता ही धर्म है और धर्म ही नैतिकता है। नैतिकता ही धर्म का सार है। नैतिकता है- मज्झिम निकाय-मध्य मार्ग।

भगवान् बुद्ध का सारा दर्शन मज्झिम निकाय मध्यम मार्ग है। भगवान् बुद्ध का दर्शन है आर्य अष्टांगिक मार्ग- सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वचन, वाणी, सम्यक आजीविका, सम्यक कर्मान्त, सम्यक स्मृति, सम्यक व्यायाम (प्रयत्न) और सम्यक समाधि। ये आठ मार्ग हमें नैतिकता की ओर अग्रसर करते हैं। इनका अनुसरण करने से हमारे दुःखों का अन्त सम्भव है। इसके साथ ही सदाचार बनाए रखने के लिए, भगवान् बुद्ध ने कहा है पंचशील जीवन में धारण करना अति आवश्यक है- 1. प्राणीमात्र की हिंसा नहीं करना, 2. चोरी नहीं करना, 3. झूठ नहीं बोलना, 4. काम वासनाओं से दूर रहना, 5. जुआ,

शराब आदि नशीली वस्तुओं का पान नहीं करना । इन पांच शीलों का अभ्यास करने से नैतिकता आती है और कुशल संस्कार बनते हैं । इस प्रकार धर्म में जो नैतिकता है उसमें मनुष्य को मनुष्य से मैत्री भाव रखने की आवश्यकता है । ईश्वर की मंजूरी की आवश्यकता नहीं । ईश्वर को प्रसन्न करने के लिये नहीं अपने भले के लिये ही आवश्यक है कि मनुष्य मनुष्य से मैत्री करे । प्रेम भाव रखे ।

नैतिकता का अर्थ है जो श्रेष्ठ है, जो समाज के हित में है और जिसमें समाज की उन्नति निहित है । इस प्रकार भगवान बुद्ध का कहना है कि धर्म ही नैतिकता है और नैतिकता ही धर्म है । जिस समाज में नैतिकता सर्वोपरि है, अर्थात् जिस समाज में आर्य अष्टांगिक मार्ग और पंचशील का अनुसरण है, वही समाज उन्नति करता है । फलता फूलता है । और खुशहाल है ।

जीवन संघर्ष है । मानव मन में विरोधी भाव आ जाते हैं । जहाँ पार्टी बाजी है, जहाँ दलबन्दी है, वहाँ मानव मन के विचार बहक जाते हैं और परिणाम में लड़ाई झगड़े होते हैं । उस संघर्ष में स्वार्थ निहित रहते हैं जिसके कारण नैतिकता का प्रभाव नहीं रहता । अतः नैतिकता लाने के लिये आवश्यक है कि मैत्री भाव अपने अन्दर विकसित किया जाय । इस प्रकार भगवान बुद्ध ने कहा है कि जिस प्रकार धर्म पवित्र है उसी प्रकार नैतिकता भी पवित्र है । समाज को श्रेष्ठतम बनाने के लिये नैतिकता का होना अति आवश्यक है । धर्म समाज से भिन्न नहीं— समाज धर्म से भिन्न नहीं ।



11. क्या सन्यास आवश्यक है?

सत्य की प्राप्ति के लिये अथवा सत्य के अनुभव के लिये क्या सन्यास लेना आवश्यक है?

यदि आपका अभिप्राय गेरुआ वस्त्र धारण कर सन्यास लेने में है, तो मेरे विचार में विकृत मन को बदले बिना गेरुआ वस्त्र धारण कर, जंगल में अथवा किसी तीर्थ स्थान में चले जायें और कहें कि मैं सन्यासी हूँ तो उस सन्यास का कोई अर्थ नहीं, कोई महत्त्व नहीं ।

सन्यास का अर्थ है जागृत अवस्था । जागृत अवस्था में रहते हुए, चैतन्य रहते हुए, अपने भीतर के विकारों को जो हमें संसार में भटका देते हैं, दूर करना । भगवे वस्त्र पहन कर घर गृहस्थी छोड़ कर, पत्नी से झगड़ा कर, बच्चों से तंग आकर, माँ बाप को छोड़ कर दूसरे स्थान पर जाकर रहने से व्यक्ति सन्यासी नहीं हो जाता । रहता तो वह फिर भी संसार में है क्योंकि उसका जो

विकृत मन है वह उसके साथ जायेगा । वहाँ दूसरा संसार बना लेगा । स्थिति बदल जायेगी किन्तु रहेगा तो संसार में ही । उसके अन्दर वासना है, क्रोध है, लोभ है और सब से ऊपर अहंकार है । उसकी 'मैं' तो नहीं गई, उसका अहं तो नहीं गया । जिसने अपनी मैं को गिरा दिया है, मन में प्रेम भाव है, करुणा है, उस व्यक्ति को भगवे वस्त्र पहनने की आवश्यकता नहीं । संसार से भागने की आवश्यकता नहीं । सांसारिक वस्तुओं, सांसारिक विचारों, सांसारिक विकारों के साथ हमारी इंद्रियाँ सम्बन्धित हैं, अतः उनका प्रभाव तो हम पर पड़ेगा ही । काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार जो बाहर से हमारे भीतर रेंग कर आ जाते हैं, उन परिस्थितियों को समझना और उन परिस्थितियों का सामना शान्त भाव से करना यह सन्यासी यानि मन से सन्यासी हो कर ही किया जा सकता है । उन विकारों को वश में करना ही सन्यास है, धर्म है । जिसने अपने मन के विकारों को समझ लिया है, अनुभव कर लिया है और सचेत है, जागृत है, चैतन्य है, वही सन्यासी है, योगी है, ऋषि है । क्रोध, लोभ-मोह, अहंकार इन विकारों का शमन करने से मन में ज्ञान का प्रकाश होता है । करुणा जागृत होती है । जिसके भीतर ज्ञान है उसके अन्दर करुणा जागृत होती है । जिसके भीतर अज्ञान है उसके अन्दर विकार पैदा होते हैं । वह हिंसक हैं ।

मनुष्य संसार में रहे किन्तु संसार मनुष्य में न रहे । यही सन्यास है । सांसारिक जीवन जीते हुए, गेरुआ वस्त्र धारण किये बिना भी हम सन्यस्त जीवन जी सकते हैं । मेरे विचार में तो संसार में रहते हुए जो सन्यासी की तरह जीवन जीता है, वही वास्तव में सन्यासी है । गेरुआ वस्त्र का लेबल लगाना आवश्यक नहीं । गेरुआ वस्त्र धारण कर जंगल में चले जाना तो बहुत आसान है । वहाँ आपको कोई कुछ कहने वाला नहीं । आपकी परिस्थिति ऐसी नहीं जो आपको चुनौती दे । क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार तो वैसे ही बने रहते हैं । किन्तु आप सोचते हैं कि जंगल में समाधि लगा ली और विकारों का शमन हो गया । किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं होता । दुर्वासा ऋषि जीवन भर जंगल में घोर तपस्या किये किन्तु क्रोध का शमन न कर सके और शकुन्तला को क्रोध में आकर श्राप दे दिया कि “मेरी ओर ध्यान नहीं दिया, जा, जिसकी याद में बैठी है वह तेरे को भूल जायेगा ।” उनका अहंकार उनमें जीवन्त था ।

जंगलों में घोर तपस्या करने पर भी ऋषि विश्वामित्र अपनी वासना का शमन न कर सके और सुन्दरी मेनका के रूप में आसक्त हो उससे संभोग किया ।

मेरे विचार में संसार में रहते हुए हमारे जीवन में जो चुनौतियाँ आती हैं उन्हें स्वीकारते हुए उनका सामना करें । अपने विकारों के गुलाम न रहते हुए उनके मालिक बन कर उनको वश में करें तो हमारा जीवन सुखदायी हो सकता है ।

स्थिति ऐसी होनी चाहिये कि हम संसार में रहें किन्तु संसार हम में न रहें । संसार जो सुख दे सकता है, उसका त्याग नहीं, वरन् अपनी मनः स्थिति को बदल दें । संसार में रह कर ही, संसार की पीड़ा को सहते हुए ही, अपने भीतर के विकारों को दूर कर सकते हैं । अपने विकारों को समझेंगे, चोटें लगेंगी तो ही संसार को समझेंगे और तभी हम सांसारिक विकार जो हमारे अंदर हैं, उनका सामना कर सकेंगे, उनको सुधार सकेंगे, अपनी मनः स्थिति को बदल कर ।

काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार ये जो सांसारिक विकार हमारे अन्दर प्रवेश कर जाते हैं वे एक तरह से हमारे लिये चुनौतियाँ हैं, और उन चुनौतियों पर हम तभी विजय प्राप्त कर सकते हैं जब हम अपनी मनःस्थिति को बदल लें । अपनी मनःस्थिति बदलने से ही हमारे भीतर जो विकारों का कूड़ा करकट भरा है उसे संसार की अग्नि में रहकर ही हम जला सकते हैं ।

हमें अपनी मनः स्थिति को बदलना है, संसार को नहीं । संसार तो वही रहेगा । यदि हर व्यक्ति अपने अन्दर के विकारों को दूर कर, धर्म में जीने का अभ्यास करे, प्रयास करे, संसार की सुन्दरता को देखे, सुन्दरता को देख कर प्रसन्न हो, संसार की वस्तुओं का जो प्रकृति से हमें मिली है, उनका सदुपयोग निरासक्त होकर करे, सबसे मैत्रीभाव रखे, करुणा भाव रखे, वही सन्यास है ।

सन्यास है धर्म में प्रवेश । संसार में रहकर धर्म में जीना । आज के युग में आवश्यकता है, मन से सन्यासी रह कर घर में रहें । गृहस्थ हो, पति हो, पिता हो, भाई हो, शिक्षक हो, दुकानदार हो, मजदूर हो, वह जो भी काम करने के योग्य हो वही काम करे किन्तु धार्मिक रह कर, केवल धार्मिक ।

आज धर्म के विरोधी, मन्दिर मस्जिद के नाम पर हिंसा कर रहे हैं, खून बहा रहे हैं । इस अधर्म को बन्द करने का एक ही रास्ता है कि व्यक्ति संसार में रहते हुए सुन्दर, सन्यस्त धार्मिक जीवन जीए ।

हमें सन्यस्त भाव से घर में रहना है । चाहे पिता हो, माँ हो, भाई हो, बहन हो, शिक्षक हो, दुकानदार हो अथवा मजदूर हो । अपने पर निर्भर हो कर । सन्यस्त जीवन जीने की कला है, जो संसार में रहकर, ध्यान से ही सीखी जा सकती है । संसार की चुनौतियों का सामना करने के लिए ध्यान में गहरा उतरना अति आवश्यक है । भीतर ध्यान की अग्नि जलानी है जिसमें विकारों का कूड़ा करकट जल जाये ।

संसार में रह कर, संसार से अछूते रहने की सामर्थ्य विकसित करना सन्यास है ।

सन्यास तो एक मनः स्थिति है । संसार में और फिर भी बाहर । जिन विषयों से, विचारों से दुःख घटता है उनसे मुक्त होना सन्यास है । आग में तप कर चेतना को सोने जैसा निखारना सन्यास है । सन्यास है अपनी मनः स्थिति

को बदलना जिससे संसार की चुनौतियों का सामना शांत मन से कर सकें। इस स्थिति तक पहुँचने के लिये ध्यान अति आवश्यक है। ध्यान जीवन जीने का हिस्सा है। ध्यान से ही हम जीवन जीने की कला सीखते हैं। ध्यान केवल सन्यासियों के लिये ही नहीं है। गृहस्थों के लिये भी आवश्यक है और उपयोगी है।

कहते हैं राजा जनक राजसी वेश में, राजसी ठाठ में, ऐश्वर्य में रहते हुए भी उसमें रमे नहीं थे। उनकी स्मृति जागृत थी, चैतन्य थे। उनकी सुरती धर्म में रहती थी और धर्म में रहते हुए राज काज चलाते थे। वह संसार में रहते हुए संसार से बाहर थे। उनमें धर्म था। धर्म में रहते हुए जीवन यात्रा की। बड़े-बड़े ऋषियों मुनियों की विद्वत् मण्डली उनके महल में बैठती थी। धर्म चर्चा, ज्ञान चर्चा होती थी। उन्होंने कुछ भी नहीं छोड़ा किन्तु चैतन्य रहे, जागृत रहे। सांसारिक सुख में रहते हुए निरासक्त रहे। संसार में रहते हुए, संसार से बाहर रहे। निःसन्देह यह एक ऊँची अवस्था है। इसके लिये ध्यान में गहरे जाना अति आवश्यक है।

संसार कसौटी है, परीक्षा है, चुनौती है। इसमें से गुजरे बिना कोई नया अनुभव नहीं सीख सकते। सोना आग में तप कर ही निखरता है। इसी प्रकार व्यक्ति संसार से बाहर नहीं हो सकते। संसार की पीड़ा में तप कर जो निखरता है वही सन्यासी है।

संसार में रहकर सुख का भी अनुभव करना है और दुःख का भी। सुख और दुःख दोनों ही एक सिक्के के दो पहलू हैं। सुख के पीछे दुःख छिपा है। दुःख के पीछे सुख छिपा है। दोनों का अनुभव करना है और दोनों को जिसने सम करके जाना वही सन्यासी है और संसार ही इसकी कसौटी है।

संसार एक कसौटी है, उत्तम चुनौती है जिसमें रहकर बिना गेरुआ वस्त्र धारण किये व्यक्ति सत्य का, धर्म का अनुभव कर सकता है। धार्मिक हो सकता है। संसार में रहकर ही संसार को प्रेक्टिकली-क्रियात्मिक रूप में समझा जा सकता है। संसार में रहकर ही सांसारिक विकारों को समझा जा सकता है, उनका शमन किया जा सकता है। संसार में हमारे सम्मुख जो चुनौतियाँ आती हैं उनका सामना हम अपनी मनःस्थिति बदल कर, न कि वस्त्र बदल कर, कर सकते हैं। इसके लिये साधना का अभ्यास आवश्यक है। अपनी परिस्थिति को और दूसरे की परिस्थिति को जिनसे हम सम्बन्धित हैं, समझना आवश्यक है। बिना समझ के, बिना ज्ञान के, बिना अंडरस्टैंडिंग के, उलझने पैदा हो सकती हैं और उन उलझनों के कारण परिस्थिति बिगड़ती है और फिर व्यक्ति उस परिस्थिति से बचने के लिये भागना चाहता है। ऐसी अवस्था में ज्ञान से, समझ से, परिस्थिति को सुधारा जा सकता है और उससे वही संसार सुखद हो सकता है।

संसार त्याग का अर्थ है धन के पीछे नहीं भागें । लोभ नहीं करें । जितना है, उसमें रहकर धन का सदुपयोग करें । पद, मान, प्रतिष्ठा के पीछे भागेंगे तो मन में तृष्णा पैदा होगी और यदि तृष्णा पूरी नहीं हुई तो दुःख होगा । मन में ईर्ष्या द्वेष का भाव भी जगोगा, जिसके अन्दर छिपा है अहंकार और अहंकार सब विकारों का मूल है । और ये गुण अवगुण संसार की कसौटी पर ही परखे जा सकते हैं ।

जिसके मन में प्रेम नहीं, करुणा नहीं, धर्म नहीं, दया नहीं, केवल वस्त्र बदलने से तो ये गुण नहीं आ जाते । वस्त्र बदलना तो फिर जग दिखलावा है । आडम्बर हैं, ढोंग हैं, झूठ है । ऐसे सन्यासी तो हजारों की संख्या में मिल जायेंगे किन्तु असली सन्यासी, जेन्युइन सन्यासी वस्त्र बदले या न बदले, गेरुआ वस्त्र पहने या सफेद वस्त्र पहने, पाजामा कुर्ता पहने या पेंट कोट पहने, धोती कुर्ता पहने, माला पहने, तिलक लगाए क्या फर्क पड़ता है । यदि उसके अन्दर ज्ञान है, यदि उसके व्यवहार में धर्म है, प्रेम है, करुणा है, दया है, कर्मशील है और रचनात्मक है, ऐसे व्यक्तियों की समाज को आवश्यकता है । ऐसे व्यक्तियों से समाज में सुख, समृद्धि, शान्ति और प्रसन्नता का वातावरण पैदा हो सकता है ।

यह अपनी मौज है, व्यक्ति सन्यासी के वेश में रहे अथवा गृहस्थ जीवन जीए । बन में रहे अथवा घर में रहे, किन्तु प्रेम भाव से रहे । करुणा भाव से, मैत्री भाव से, निष्काम भाव से रहे । संसार में किसी भी स्थान पर रहे, किसी भी स्थिति में रहे, सब से प्रेम से रहे । धर्म में रहे । चैतन्य रहे, जागरूक रहे । धर्म में स्मृति बनी रहे । यही सत्य है । यही धर्म है ।

भवतु सब्ब मंगलं



“Wherever the Buddha’s teachings have flourished,
either in cities or countrysides,
people would gain inconceivable benefits.
The land and people would be enveloped in peace.
The sun and moon will shine clear and bright.
Wind and rain would appear accordingly,
and there will be no disasters.
Nations would be prosperous
and there would be no use for soldiers or weapons.
People would abide by morality and accord with laws.
They would be courteous and humble,
and everyone would be content without injustices.
There would be no thefts or violence.
The strong would not dominate the weak
and everyone would get their fair share.”

※ THE BUDDHA SPEAKS OF
THE INFINITE LIFE SUTRA OF
ADORNMENT, PURITY, EQUALITY
AND ENLIGHTENMENT OF
THE MAHAYANA SCHOOL ※

GREAT VOW

***BODHISATTVA EARTH-TREASURY
(BODHISATTVA KSITIGARBHA)***

***“ Unless Hells become empty,
I vow not to attain Buddhahood;
Till all have achieved the Ultimate Liberation,
I shall then consider my Enlightenment full !”***

***Bodhisattva Earth-Treasury is
entrusted as the Caretaker of the World until
Buddha Maitreya reincarnates on Earth
in 5.7 billion years.***

***Reciting the Holy Name:
NAMO BODHISATTVA EARTH-TREASURY***

***Karma-erasing Mantra:
OM BA LA MO LING TO NING SVAHA***

With bad advisors forever left behind,
From paths of evil he departs for eternity,
Soon to see the Buddha of Limitless Light
And perfect Samantabhadra's Supreme Vows.

The supreme and endless blessings
of Samantabhadra's deeds,
I now universally transfer.
May every living being, drowning and adrift,
Soon return to the Pure Land of
Limitless Light!

~The Vows of Samantabhadra~

I vow that when my life approaches its end,
All obstructions will be swept away;
I will see Amitabha Buddha,
And be born in His Western Pure Land of
Ultimate Bliss and Peace.

When reborn in the Western Pure Land,
I will perfect and completely fulfill
Without exception these Great Vows,
To delight and benefit all beings.

~The Vows of Samantabhadra
Avatamsaka Sutra~

DEDICATION OF MERIT

May the merit and virtue
accrued from this work
adorn Amitabha Buddha's Pure Land,
repay the four great kindnesses above,
and relieve the suffering of
those on the three paths below.

May those who see or hear of these efforts
generate Bodhi-mind,
spend their lives devoted to the Buddha Dharma,
and finally be reborn together in
the Land of Ultimate Bliss.
Homage to Amita Buddha!

NAMO AMITABHA

南無阿彌陀佛

【印度文 HINDI 文：法輪經、學佛行儀】

財團法人佛陀教育基金會 印贈

台北市杭州南路一段五十五號十一樓

Printed and donated for free distribution by

The Corporate Body of the Buddha Educational Foundation

11F., 55 Hang Chow South Road Sec 1, Taipei, Taiwan, R.O.C.

Tel: 886-2-23951198, Fax: 886-2-23913415

Email: overseas@budaedu.org

Website: <http://www.budaedu.org>

Mobile Web: m.budaedu.org

This book is strictly for free distribution, it is not to be sold.

यह पुस्तिका विनामूल्य वितरण के लिए है बिक्री के लिए नहीं ।

Printed in Taiwan

3,000 copies; April 2015

IN019-13136



